Published by Shri Nathuram Premi, Proprietor Shri Jain
Grantha Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Near
G P Tank-Bombay

Printed by G N Kulkarni at the Karnatak Press,
434, Thakurdwar, Bombay



श्रीवीतरागाय नमः

श्रीसमन्तभद्रस्वामिरचित

रत्नकरण्डश्रावकाचार

अन्वय आर अर्थसहित ।

मङ्गलाचरणम् । अनुष्टुप्श्लोक ।

नमः श्रीवर्द्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥ १ ॥

अन्वयार्थौ—(यद्विद्या) जिनका ज्ञान, (सालोकानां) अलोकसहित (त्रिलोकानां) तीनों लोकोंको (दर्पणायते) दर्पणकी समान आचरण करता है अर्थात् जिनकी ज्ञानरूपी आरसीमें तीनों लोक झलकते हैं ('तस्मै') तिन (निर्धूतकलिलात्मने) पापरूपी मैलको आत्मासे धो डालनेवाले, (श्रीवर्द्धमानाय) श्रीवर्द्धमान भगवान्‌को (नमः) नमस्कार ('अस्तु') होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—लोकालोकके जाननेवाले और चार घातियारूपी कर्ममलको नष्ट करनेवाले महावीर स्वामीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

धर्मोपदेश करनेकी प्रतिज्ञा ।

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम् ।
संसारदुःखतः सत्त्वान्यो धरत्युत्तमे सुखे ॥ १ ॥

अन्वयार्थौ—(यः) जो (सत्त्वान्) जीवोंको (ससारदुःखतः) ससारके दुःखोसे छुटाकर (उत्तमे सुखे) उत्तम सुखमें (धरति) धारण करता है ('तम्') उस (कर्मनिवर्हण) कर्मोंके नाश करनेवाले (समीचीनं) अति उत्कृष्ट (धर्मं) धर्मको ('अह') मै (समन्तभद्राचार्य्य) (देशयामि) उपदेश करता हूं ॥ २ ॥

धर्मका लक्षण ।

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः ।
यदीयप्रत्नीकानि भवन्ति भवपद्धतिः ॥ ३ ॥

अन्वयार्थौ—(धर्मेश्वराः) धर्मके ईश्वर गणधरादि आचार्य (सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि) सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको (धर्मं) धर्म (विदुः) कहते है (यदीयप्रत्यनाकानि) जिनके कि उल्टे मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र (भवपद्धतिः) ससारकी परिपाटीरूप (भवन्ति) होते है ॥ ३ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्ररूप रत्नत्रयको धर्म कहते हैं, और मिथ्यात्वको ससारकी परिपाटी अर्थात् अधर्म कहते हैं ॥ ३ ॥

सम्यग्दर्शनका लक्षण ।

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम् ।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥ ४ ॥

अन्वयार्थौ—(परमार्थानां) सत्यार्थ अथवा मोक्षके कारणभूत (आप्तागमतपोभृताम्) देव शास्त्र और गुरुका (अष्टाङ्गं) अष्टअंगसहित, (त्रिमूढापोढं) तीन मूढतारहित तथा (अस्मयं) आठमदरहित (श्रद्धानं) श्रद्धान करना (सम्यग्दर्शन) सम्यग्दर्शन (अस्ति) है ॥ ४ ॥

भावार्थ—सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरुको ही मोक्षके कारण मान कर उनकी उपासना (सेवा पूजा) करना, अन्य किसी भी देव गुरु शास्त्रकी सेवा पूजा नहीं करना, सम्यग्दर्शन है ॥ ४ ॥

सत्यार्थ आप्तका (सच्चे देवका) लक्षण।

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्य नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥ ५ ॥

अन्वयार्थौ—(नियोगेन) नियमसे (उच्छिन्नदोषेण) रागद्वेषादि दोषरहित वीतराग (सर्वज्ञेन) सर्वज्ञ[1] और (आगमेशिना) आगमका ईश[2] ही (आप्तेन) आप्त[3] अर्थात् सच्चादेव (भवितव्य) होता है। (हि) निश्चय करके (अन्यथा) और किसी प्रकार (आप्तता) आप्तपना[4] (न भवेत्) नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

वीतरागका लक्षण।

क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्त स प्रकीर्त्यते ॥ ६ ॥

अन्वयार्थौ—(यस्य) जिस देवके (क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मयाः) क्षुधा, तृषा, बुढापा, रोग, जन्म, मरण, भय, गर्व (रागद्वेषमोहाः) राग, द्वेप, मोह (च) और चिन्ता,

---

१ भूतभविष्यवर्तमानका ज्ञाता। २ सबको हितका उपदेश करनेवाला। ३ सत्यार्थवक्ता। ४ देवपना।

मद, अरति, खेद, स्वेद, निद्रा, आश्चर्य (न 'सन्ति') नहीं है, (सः) वही (आप्तः) आप्त वीतराग देव (प्रकीर्त्यते) कहा जाता है ॥ ६ ॥

हितोपदेशीका लक्षण ।

परमेष्ठी परञ्ज्योतिर्विरागो विमलः कृती ।
सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः सार्वः शास्तोपलाल्यते ॥ ७ ॥

अन्वयार्थौ—('यः') जो (**परमेष्ठी**) परमपदमें रहनेवाला हो, (**परञ्ज्योतिः**) उत्कृष्ट ज्योतिवाला[1] हो, (**विरागः**) रागरहित वीतराग हो, (**विमलः**) कर्ममलरहित[2] हो, (**कृती**) कृतकृत्य[3] हो, (**सर्वज्ञः**) सर्वज्ञ हो अर्थात् भूतभविष्यत्वर्त्तमानकालकी समस्त पर्यायोंसहित[4] समस्त पदार्थोंका जाननेवाला हो, (**अनादिमध्यान्तः**) आदि मध्य अन्तसे रहित हो, और (**सार्वः**) समस्त जीवोंका हितकारक हो ('सः') वही (**शास्ता**) हितोपदेशी (**उपलाल्यते**) कहा जाता है ॥ ७ ॥

प्रश्न—जो विराग और कृतकृत्य है, वह हितोपदेशी अर्थात् सब जीवोंका हित करनेवाला उपदेश कैसे दे सकता है ? इसका उत्तर—

अनात्मार्थं विना रागैः शास्ता शास्ति सतो हितम् ।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते ॥ ८ ॥

अन्वयार्थौ—(**शास्ता**) हितोपदेशी जो होता है, वह (**अनात्मार्थं**) विना प्रयोजन और (**रागैः विना**) रागादि भावोंके विना ही (**सतः हितं**) सत्पुरुषोंके हितको (**शास्ति**)

---

१ केवलज्ञानरूपी ज्योतिवाला । २ चार घातियारूपी कर्ममलरहित । ३ जिसको कोई काम करना बाकी न रहा हो । ४ अवस्थाओंकर सहित ।

उपदेश करता है, क्योंकि (शिल्पिकरस्पर्शात्) बजानेवालेके हाथके स्पर्श होनेसे (ध्वनन्) शब्द करता हुआ (मुरजः) मृदंग (किं अपेक्षते) क्या इच्छा करता है? कुछ भी नहीं ॥ ८ ॥

सत्यार्थ (सच्चे) शास्त्रका लक्षण ।

आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्यमदृष्टेष्टविरोधकम् ।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥ ९ ॥

अन्वयार्थौ—('यत्') जो (आप्तोपज्ञं) आप्तका कहा हुआ हो, (अनुल्लङ्घ्यं) वादी प्रतिवादीद्वारा खंडन करनेमें न आवे, (अदृष्टेष्टविरोधकं) प्रत्यक्ष अनुमानादि प्रमाणोंसे विरोधरहित हो, (तत्त्वोपदेशकृत्) वस्तुस्वरूपका उपदेश करनेवाला हो, (सार्वं) सब जीवोंका हितकारक हो और (कापथघट्टनं) मिथ्यामार्गका खंडन करनेवाला हो, ('तत्') वह (शास्त्रं) सत्यार्थ शास्त्र ('अस्ति') है ॥ ९ ॥

सत्यार्थ (सच्चे) गुरुका लक्षण ।

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥ १० ॥

अन्वयार्थौ— ('यः') जो (विषयाशावशातीतः) विषयोंकी आशाके वशसे रहित हो, (निरारम्भः) आरंभरहित हो, (अपरिग्रहः) चौवीस प्रकारके परिग्रहोंसे रहित हो, और (ज्ञानध्यानतपोरक्तः) ज्ञान ध्यान और तपमें लवलीन हो, (सः) वह (तपस्वी) तपस्वी अर्थात् गुरु (प्रशस्यते) प्रशंसा करने योग्य है ॥ १० ॥

---

१ 'ज्ञानध्यानतपोरत्नः' ऐसा भी पाठ है जिसका अर्थ यह है, कि ज्ञान ध्यान और तप ही हैं रत्न जिसके ऐसा ।

सम्यक्त्वके आठ अंग।

१. निःशङ्कित अंगका लक्षण।

इदमेवेदृशमेव तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा।
इत्यकम्पायसाम्भोवत्सन्मार्गेऽसंशया रुचिः॥ ११॥

अन्वयार्थौ—(तत्त्वं) वस्तुका स्वरूप (इदं एव) यही है, (ईदृश एव) इसी प्रकार ही है, (अन्यत् न) और नहीं है, (अन्यथा च न) और अन्यप्रकार भी नहीं है, (इति) इस प्रकार (सन्मार्गे) जैनमार्गमें (आयसाम्भोवत्) खड्गके पानीके समान (अकम्पा) निश्चल (रुचिः) श्रद्धान (असंशया) निःशङ्कित अंग कहा जाता है॥ ११॥

२. निःकांक्षित अंगका लक्षण।

कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरन्तरितोदये।
पापवीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकाङ्क्षणा स्मृता॥ १२॥

अन्वयार्थौ—(कर्मपरवशे) जो कर्मके परवश है, (सान्ते) अन्तकरसहित है, (दुःखैः अन्तरितोदये) जिसका उदय दुःखों-करके मिला हुआ है, और (पापवीजे) जो पापका वीजभूत है (सुखे) उस सांसारिक सुखमें (अनास्था) अनित्यरूप (श्रद्धा) श्रद्धा रखना अर्थात् सांसारिक सुखकी वांछा नहीं करना, सो (अनाकाङ्क्षणा) निःकांक्षितनामा अंग (स्मृता) कहा गया है॥१२॥

३. निर्विचिकित्सित अंगका लक्षण।

स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते।
निर्जुगुप्सागुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सता॥ १३॥

---

(१) जिस तरह तलवारकी धारका पानी (आव) हिलता चलता नहीं है, उस प्रकारका पक्का विश्वास।

अन्वयार्थौ—(स्वभावतः) स्वभावसे (अशुचौ) अपवित्र, परन्तु (रत्नत्रयपवित्रिते) रत्नत्रयसे पवित्र ('एतादृशि') ऐसे धर्मात्माओंके (काये) शरीरमें (निर्जुगुप्सागुणप्रीतिः) ग्लानि-रहित गुणोंमें प्रीति करना (निर्विचिकित्सिता) निर्विचिकित्सित अंग (मता) माना गया है ॥ १३ ॥

४. अमूढदृष्टि अंगका लक्षण ।

कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः ।
असंपृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढा दृष्टिरुच्यते ॥ १४ ॥

अन्वयार्थौ—(दुःखानां पथि) दुःखोंके मार्गरूप (कापथे) कुमार्ग[1]में (अपि) और (कापथस्थे) कुमार्गमें स्थित मिथ्याति-योंमें (असम्मतिः) मनसे सम्मत न होना, (असंपृक्तिः) कायसे सराहना नहीं करना, (अनुत्कीर्तिः) वचनसे प्रशंसा नहीं करना, सो (अमूढा दृष्टिः) अमूढदृष्टि नामा अंग (उच्यते) कहा जाता है ॥ १४ ॥

५ उपगूहन अंगका लक्षण ।

स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम् ।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वन्त्युपगूहनम् ॥ १५ ॥

अन्वयार्थौ—(स्वयं शुद्धस्य) जो अपने आप ही पवित्र है, ऐसे (मार्गस्य) जैनमार्गकी (बालाशक्तजनाश्रयां) अज्ञानी तथा असमर्थ जनोंके आश्रयसे उत्पन्न हुई (वाच्यतां) निंदाको (यत् प्रमार्जन्ति) जो दूर करते है (तत्) उसको (उपगूहनं) उपगूहन अंग (वदन्ति) कहते हैं ॥ १५ ॥

---

१ मिथ्यामतमें ।

६ स्थितिकरण अंगका लक्षण ।

दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः ।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते ॥ १६ ॥

अन्वयार्थौ—(दर्शनात्) सम्यग्दर्शनसे (वा) अथवा (चरणात् अपि) सम्यक्चारित्रसे भी (चलतां) डिगते हुए पुरुषोंको (धर्मवत्सलैः) धर्मसे प्रेम करनेवाले पुरुषोंके द्वारा ('यत्') जो (प्रत्यवस्थापन) फिर उसीमें स्थिर किया जाना है ('तत्') सो (प्राज्ञः) विद्वानोंके द्वारा (स्थितिकरण) स्थितिकरण अंग (उच्यते) कहा जाता है ॥ १६ ॥

७ वात्सल्यअंगका लक्षण ।

स्वयूथ्यान्प्रति सद्भावसनाथापेतकैतवा ।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥ १७ ॥

अन्वयार्थौ—(स्वयूथ्यान् प्रति) अपने सहधर्मी भाइयोंके प्रति (सद्भावसनाथा) समीचीन भावोंसहित और (अपेतकैतवा) छलकपटरहित (यथायोग्य) यथायोग्य (प्रतिपत्तिः) आदरसत्कार करना (वात्सल्य) वात्सल्यनामा अंग (अभिलप्यते) कहा जाता है ॥ १७ ॥

८. प्रभावना अंगका स्वरूप ।

अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम् ।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥ १८ ॥

अन्वयार्थौ—(अज्ञानतिमिरव्याप्तिं) अज्ञानरूपी अंधकारके विस्तारको (यथायथ) जिसप्रकार बने उस प्रकार (अपाकृत्य) दूर करके (जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः) जिनमार्गका माहात्म्य

वा प्रभाव समस्त मतावलम्बियोंमें प्रगट कर देना (प्रभावना) प्रभावना नामा आठवाँ अंग (स्यात्) है ॥ १८ ॥

भावार्थ—संसारमें चारों ओर अज्ञानरूपी अन्धकार फैला हुआ है। लोग नहीं जानते हैं कि सुमार्ग कौन है और कुमार्ग कौन है। वस्तुके यथार्थ स्वरूपसे वे सर्वथा अपरिचित हैं। विद्याका प्रचार करके, वास्तविक तत्त्वोंके स्वरूपको प्रकट करके उक्त अन्धकारको मिटादेना, तनमनधन लगाकर जैसे बने तैसे दूसरों-को ज्ञानी बना देना सच्ची धर्मप्रभावना है।

प्रत्येक अंगमें प्रसिद्ध होनेवालोंके नाम।

तावदञ्जनचौरोऽङ्गे ततोऽनन्तमती स्मृता।
उद्दायनस्तृतीयेऽपि तुरीये रेवती मता ॥ १९ ॥
ततो जिनेन्द्रभक्तोऽन्यो वारिषेणस्ततः परः।
विष्णुश्च वज्रनामा च शेषयोर्लक्ष्यतां गतौ ॥ २० ॥

अन्वयार्थौ—(तावत् अङ्गे) पहले निःशंकित अंगमें (अञ्जन चौरः) अञ्जन चोर, (ततः अनन्तमती) दूसरे निःकांक्षित अंगमें शेठकी पुत्री अनन्तमती, (स्मृता) स्मरण की जाती है। (तृतीये) तीसरे निर्विचिकित्सित अंगमें (उद्दायनः) उद्दायन नामा राजा, (अपि) और (तुरीये) चौथे अमूढदृष्टी अंगमें (रेवती) रेवती नामा रानी, (मता) मानी गई है ॥ १९ ॥

(ततः) फिर पाँचवें उपगूहन अंगमें (जिनेन्द्रभक्त) जिनेन्द्रभक्त नामका शेठ (ततः परः अन्यः) तत्पश्चात् छट्ठे स्थिति-करण अंगमें (वारिषेणः) वारिषेण (श्रेणिक राजाका पुत्र) (च) और (शेषयोः) शेषके दोनों अंगोंमें अर्थात् वात्सल्य और प्रभावना अंगमें (विष्णुः) विष्णुकुमार मुनि (च) और

(वज्रनामा) वज्रकुमार मुनि (लक्ष्यतां गतौ) लक्ष्यपनेको प्राप्त हुए हैं, अर्थात् प्रसिद्ध हुए हैं ॥ २० ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शनके अग आठ हैं। यों तो इन एक एक अगोंका पालन करनेवाले सैकडों मनुष्य हो गये है, परन्तु उन सबमें सबसे अधिक ऊपर कहे हुए अजन चोर आदि प्रसिद्ध हैं। इन सबकी जुदा जुदा कथायें दूसरे ग्रन्थोंमेंसे पढ लेना चाहिये।

नांगहीनमलं छेत्तुं दर्शन जन्मसन्ततिम्।
न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदना॥२१॥

अन्वयार्थौ—('यथा') जैसे (अक्षरन्यूनः मन्त्र) अक्षर-रहित मन्त्र (विषवेदना) विषकी वेदनाको (हि) निश्चयकरके (न निहन्ति) नष्ट नहीं करता है, ('तथा') तैसे ही (अङ्गहीन अङ्गरहित (दर्शनं-सम्यग्दर्शन भी (जन्मसन्ततिं) ससारकी सन्तति (छेत्तुं) छेदनेको (अलं) समर्थ (न) नहीं है ॥ २१ ॥

भावार्थ—मन्त्रोंके अक्षरोंमें शक्ति होती है। वही मन्त्र सिद्ध हो सकता है जो शुद्ध हो अर्थात् जिसमें पूरे अक्षर हों। यदि एक भी अक्षर कम होगा तो उससे सिद्धि नहीं होगी। इसी तरह अष्टाङ्गयुक्त सम्यग्दर्शन ही ससारसे मुक्त कर सकता है। यदि अगरहित हो तो नहीं।

लोकमूढताका स्वरूप

आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते॥ २२ ॥

अन्वयार्थौ—धर्म समझकर (आपगासागरस्नानं) गंगा यमुनादि नदियोंमें तथा समुद्रमें स्नान करना, (सिकताश्मनां)

---

(१) अशुद्ध मन्त्र।

बालुका और पत्थरोंका (उच्चय) ढेर करना, (गिरिपातः) पर्वतसे गिरना (च) और (अग्निपातः) अग्निमें जलना (लोकमूढं) लोकमूढ़ता (निगद्यते) कही जाती है ॥ २२ ॥

देवमूढ़ताका स्वरूप ।

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः ।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥ २३ ॥

अन्वयार्थौ—(**आशावान्**) आशावान् होता हुआ (**वरोपलिप्सया**) वरकी इच्छा करके (**रागद्वेषमलीमसाः**) रागद्वेषरूपी मैलसे मलीन (**देवताः**) देवताओंकी (**यत्**) जो (**उपासीत**) उपासना की जाती है ('**तत्**') सो (**देवतामूढं**) देवमूढ़ता (**उच्यते**) कही जाती है ॥ २३ ॥

भावार्थ—जो सम्यग्दृष्टि है–जिसे पदार्थका यथार्थस्वरूप भास गया है, उसकी दृष्टिमें वीतराग सर्वज्ञ ही पूज्य हो सकते हैं। उन्हें छोड़कर किसीसे राग और किसीसे द्वेष करनेवाले जो अनेक देव प्रसिद्ध हैं वे पूज्य नहीं हो सकते । वह यह भी जानता है कि कर्मोदयके विरुद्ध ये न तो किसीकी भलाई कर सकते है और न किसीकी बुराई । इस कारण वह किसी तरहकी आशासे या वरकी इच्छासे उनकी सेवा पूजा नहीं करता ।

पाखण्डिमूढ़ता (गुरुमूढ़ताका) स्वरूप ।

सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्त्तवर्तिनाम् ।
पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाखण्डिमोहनम् ॥ २४ ॥

अन्वयार्थौ—(**सग्रन्थारम्भहिंसानां**) परिग्रह आरंभ और

---

(१) जैसे मारवाड़में छींछरिया विदायक माना जाता है। (२) जैसे पतिके पीछे सती होना ।

हिंसासहित (संसारावर्त्तवर्त्तिनाम्) संसारके चक्रमें भ्रमण करनेवाले (पाखण्डिनां) पाखंडी साधु तपस्वियोंका (पुरस्कार:) आदरसन्मान भक्तिपूजादिक करना सो (पाखण्डिमोहनं) गुरुमूढता (ज्ञेयं) जानना ॥ २४ ॥

अष्टमदोंके नाम ।

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः ।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥ २५ ॥

अन्वयार्थौ—(ज्ञानं) विद्या, (पूजां) प्रतिष्ठा, (कुलं) कुल, (जातिं) जाति, (बलं) शक्ति, (ऋद्धिं) सम्पत्ति, (तप:) व्रताचरण, (वपु) और शरीर ('एतान्' अष्टौ आश्रित्य) इन आठोंको आश्रय करके ('यत्') जो (मानित्व) गर्व करना है, ('तत्') उनको (गतस्मया:) मदरहित गणधरादिक आचार्य (स्मयं) मद (आहुः) कहते हैं ॥ २५ ॥

गर्व करनेका फल ।

स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः ।
सोऽत्येति धर्ममात्मीय न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥ २६ ॥

अन्वयार्थौ—(यः) जो (गर्विताशय:) गर्वयुक्त आशयवाला (स्मयेन) अपने घमंडसे (अन्यान् धर्मस्थान्) अन्य धर्मात्मा पुरुषोंको (अत्येति) उल्लंघन करता है, अर्थात् उनका अपमान करता है (सः) वह पुरुष (आत्मीय धर्मम्) अपने धर्मको (अत्येति) उल्लंघन करता है ('यत:') क्योंकि (धार्मिकैः विना) धर्मात्माओंके विना (धर्मः न) धर्म नहीं है।

भावार्थ—धर्मको चलानेवाले धर्मात्मा पुरुष ही होते हैं । इसलिये जिसने धर्मात्मा पुरुषोंका तिरस्कार किया, उसने अपने

रत्नत्रयरूप धर्मका ही तिरस्कार किया । क्योंकि धर्मात्मा पुरुषोंका तिरस्कार होनेसे वे तथा उनकी देखादेखी अन्य धर्मात्मा भी धर्ममें शिथिल हो जाते हैं और उनका अपमान देखकर अन्यान्य पुरुष भी धर्मको ग्रहण करनेमें अग्रसर नहीं होते हैं ॥ २६ ॥

यदि पापनिरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ।
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ॥ २७ ॥

अन्वायार्थौ—(**यदि**) यदि (**पापनिरोधः**) पापका निरोध है ('**तर्हि**') तो (**अन्यसम्पदा**) अन्य सम्पदासे (**किं प्रयोजन**) क्या प्रयोजन है? (**अथ**) और यदि (**पापास्रवः**) पापका आश्रव (**अस्ति**) है, ('**तर्हि**') तो (**अन्यसम्पदा**) अन्य सम्पदासे (**किं प्रयोजन**) क्या प्रयोजन है? ॥ २७ ॥

भावार्थ—यदि पापका आना रुक गया, तो यही बडी भारी सम्पदा मिल गई, और सम्पदाकी क्या जरूरत रही? और यदि पापोंका आस्रव होता रहा, तो दूसरी सम्पत्ति मिलनेसे भी क्या? पापका दुःखरूप फल तो भोगना ही पडेगा ।

सम्यग्दर्शनकी महिमा ।

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम् ।
देवा देव विदुर्भस्मगूढांगारान्तरौजसम् ॥ २७ ॥

अन्वयार्थौ—(**देवाः**) गणधरादिक देव (**सम्यग्दर्शनसम्पन्न**) सम्यग्दर्शनसहित (**मातंगदेहज अपि**) चाण्डलको भी (**भस्मगूढांगारान्तरौजस** '**इव**') भस्मसे ढके हुए गुप्त अगारके भीतरी प्रकाशके समान (**देव**) देव (**विदुः**) कहते हैं ॥ २८ ॥

भावार्थ—जैसें ऊपरकी राखसे अगार राख ही सरीखा माळूम

होता है, परन्तु उसके भीतर अग्नि जरूर छुपी रहती है, इसी प्रकारसे यद्यपि सम्यक्ती चाडाल ऊपरसे चाटालसा दिखता है, परन्तु उसके अन्तरगमें सम्यग्दर्शनकी जागती हुई जोत छुपी रहती है। इससे वह देवतुल्य है।

श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विपात्।
कापि नाम भवेदन्या सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम् ॥ २९ ॥

अन्वयार्थौ—(धर्मकिल्विपात्) धर्म और पापसे (श्वा अपि देव.) कुत्ता भी देव और (देवः अपि श्वा) देव भी कुत्ता (जायते) हो जाता है। (धर्मात्) धर्मसे (शरीरिणां) जीवोंके (अन्या) अन्य (कापि नाम सम्पत्) कोई भी अनिर्वचनीय सम्पदा (भवेत्) हो, अर्थात वर्मसे हर कोई सम्पति प्राप्त हो सकती है ॥ २९ ॥

सम्यग्दृष्टिके लिये त्यागने योग्य कार्य।

भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिंगिनाम्।
प्रणाम विनय चैव न कुर्य्यु शुद्धदृष्टयः ॥ ३९ ॥

अन्वायार्थौ—(शुद्धदृष्टयः) शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव (भयाशास्नेहलोभात्) भय, आशा, प्रीति और लोभसे (कुदेवागमलिंगिनाम्) कुदेव कुशास्त्र और कुलिंगियोंको (प्रणाम) प्रणाम (च) और (विनयं एव) विनय भी न (न कुर्य्युः) न करे ॥ ३० ॥

सम्यग्दर्शनकी प्रधानता।

दर्शन ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते।
दर्शन कर्णधर तन्मोक्षमार्गे प्रचक्ष्यते ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थौ—(ज्ञानचारित्रात्) ज्ञान और चारित्रकी अपेक्षा

(दर्शन) सम्यग्दर्शन (साधिमान) मुख्यतया (उपाश्नुत) उपासना किया जाता है, ('यतः') क्योंकि (तद्दर्शन) वह सम्यग्दर्शन (मोक्षमार्गे) मोक्षमार्गमें (कर्णधार) खेवटियाके सदृश (प्रचक्ष्यते) कहा जाता है ॥ ३१ ॥

विद्यावृत्तस्य संभूतिस्थितिवृद्धिफलोदयाः ।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ॥ ३२ ॥

अन्वयार्थौ—(सम्यक्त्वे) सम्यक्त्वके (असति) न होते (बीजाभावे) बीजके विना (तरो इव) वृक्षके समान (विद्यावृत्तस्य) ज्ञान और चारित्रके (संभूतिस्थितिवृद्धिफलोदया) उत्पत्ति स्थिति वृद्धि और फलका लगना (न सन्ति) नहीं है ।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनके हुए विना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होता नहीं । सम्यग्दर्शनके विना ज्ञान मिथ्याज्ञान कहलाता है और व्रतादिक कुचारित्र कहलाते हैं ॥ ३२ ॥

मोही और निर्मोहीका अन्तर ।

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान ।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥ ३३ ॥

अन्वयार्थौ—(निर्मोहः) मोहरहित[1] (गृहस्थः) गृहस्थ भी (मोक्षमार्गस्थः) मोक्षमार्गमें स्थित है, किन्तु (मोहवान्) मोहवान्[2] (अनगारः एव) मुनि भी (न) मोक्षमार्गमें स्थित नहीं है, ('अत एव') इस कारण (मोहिनः मुने) मोही[3] मुनिसे (निर्मोह गृही) निर्मोही सम्यग्दृष्टी गृहस्थ (श्रेयान्) श्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥

सम्यक्त्व और मिथ्यात्व ।

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।

---

(१) दर्शनमोहसे रहित । (२) मिथ्यात्वी । (३) द्रव्यलिंगी मुनिसे ।

श्रेयाऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसम नान्यत्तनूभृताम् ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थौ—(**त्रैकाल्ये**) तीन लोक और (**त्रिजगति**) तीन जगतमें (**तनूभृतां**) जीवोंका (**सम्यक्त्वसम**) सम्यक्त्वके समान (**किञ्चित् अपि**) कुछ भी (**श्रेयः**) कल्याण (**न**) नहीं है (**च**) और (**मिथ्यात्वसम**) मिथ्यात्वके समान (**अश्रेय. न**) अकल्याण नहीं है ॥ ३४ ॥

सम्यग्दर्शनका महत्त्व ।

आर्या ।

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि ।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिका ॥ ३५ ॥

अन्वयार्थौ—(**सम्यग्दर्शनशुद्धाः**) जो सम्यग्दर्शनसे शुद्ध हैं वे (**अव्रतिका अपि**) व्रतरहित होनेपर भी (**नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि**) नरक तिर्यञ्च नपुसक और स्त्रीपनेको (**च**) तथा (**दुष्कुलविकृताल्पायु.**) नीचकुल विकलअग अल्पआयु और (**दरिद्रतां**) दरिद्रपनेको (**न**) नहीं (**व्रजन्ति**) प्राप्त होते हैं ॥ ३५ ॥

ओजस्तेजोविद्यावीर्य्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथाः ।
महाकुला महार्था मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थौ—(**दर्शनपूताः**) शुद्ध सम्यग्दृष्टी जीव (**ओजस्तेजोविद्यावीर्य्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथाः**) कान्ति, प्रताप-विद्या, वीर्य, कीर्ति, कुलवृद्धि, विजय विभवके स्वामी (**महाकुलाः**) उच्चकुली (**महार्थाः**) धर्म अर्थ काम मोक्षके साधक और (**मानवतिलकाः**) मनुष्योंमें शिरोमणि (**भवन्ति**) होते हैं । ३६

अष्टगुणपुष्टितुष्टा दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः ।
अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमन्ते जिनेन्द्रभक्ताः
स्वर्गे ॥ ३७ ॥

अन्वयार्थौ—(दृष्टिविशिष्टाः) सम्यग्दृष्टि जीव (स्वर्गे) स्वर्गोंमें (जिनेन्द्रभक्ताः) जिनेन्द्रभगवानके भक्त, (अष्टगुणपुष्टितुष्टाः) अष्टऋद्धियोंसे तुष्ठायमान, और (प्रकृष्टशोभाजुष्टाः) अतिशय शोभायुक्त होकर (अमराप्सरसां) देवदेवांगनाओंकी (परिषदि) सभामें (चिरं) वहुत कालपर्यंत (रमन्ते) आनन्द करते हैं ३७

नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाः सर्वभूमिपतयश्चक्रम् ।
वर्त्तयितुं प्रभवन्ति स्पष्टदृशः क्षत्रमौलिशेखरचरणाः ॥

अन्वयार्थौ—(स्पष्टदृशः) निर्मल सम्यक्त्वके धारक पुरुष (क्षत्रमौलिशेखरचरणाः) जिनके चरणोंपर राजाओंके मुकुटोंके शिखर झुकते हैं ऐसे, तथा (नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाः) नवनिधि और चौदह रत्नोंके अधीश, (सर्वभूमिपतयः) समस्त भूमिके पति और (चक्रं) चक्र (वर्त्तयितुं) प्रवर्तानेको (प्रभवन्ति) समर्थ होते हैं ३८

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी पुरुष सम्यक्त्वके प्रभावसे चक्रवर्ती राजा होते हैं जिनके कि चरणों पर सव राजा मस्तक झुकाते हैं और जो नवनिधियों, चौदह रत्नों और छह खंडोंके स्वामी होते हैं ।

अमरासुरनरपतिभिर्यमधरपतिभिश्च नूतपादाम्भोजाः । दृष्टया सुनिश्चितार्था वृषचक्रधरा भवन्ति लोकशरण्याः ॥ ३९ ॥

---

१ आज्ञा वा चक्ररूपी रत्न ।

अन्वयार्थौ—(दृष्ट्या) सम्यग्दर्शनके प्रभावसे (सुनिश्चितार्थाः) भले प्रकार निश्चय कर लिये हैं जीवादिक पदार्थ जिन्होंने ऐसे 'तथा' (अमरासुरनरपतिभिः) इन्द्र धरणीन्द्र नरेन्द्रोंकर (च) और (यमधरपतिभिः) गणधरोकर (नूतपादाम्भोजाः) नमस्कार किये गये है चरणकमल जिनके ऐसे (वृषचक्रधराः) धर्मचक्रके धारक तीर्थंकर (लोकशरण्याः) तीनों लोकोंके जीवोंको शरणभूत (भवन्ति) होते हैं ॥ ३९ ॥

शिवमजरमरुजमक्षयमव्याबाधं विशोकभयशङ्कम् ।
काष्ठागतसुखविद्याविभवं विमलं भजन्ति दर्शन-
शरणाः ॥ ४० ॥

अन्वयार्थौ—(दर्शनशरणाः) सम्यग्दर्शन ही है शरण जिनको ऐसे जीव (अजरं) जरारहित, (अरुजं) रोगरहित, (अक्षयं) क्षयरहित, (अव्याबाधं) बाधारहित, (विशोकभयशङ्कं) शोकभयशकारहित, (काष्ठागतसुखविद्याविभवं) परम प्रकर्षताको प्राप्त हुआ है सुख और ज्ञानका विभव जिसमें ऐसे और (विमलं) कर्ममलरहित (शिवं) मोक्षपदको (भजन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

वसन्ततिलका ।

देवेन्द्रचक्रमहिमानममेयमानम्
राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोर्चनीयम् ।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकम्
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः ॥ ४१ ॥

अन्वयार्थौ—(जिनभक्तिः भव्यः) जिनेन्द्रकी है भक्ति

जिसके ऐसा भव्यजीव[1] (अमेयमानं) अपरिमित (देवेन्द्रचक्र-महिमानं) देवेन्द्रसमूहकी महिमाको और (अवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयं) राजाओंके मस्तकसे पूजनीय (राजेन्द्रचक्रं) चक्रवर्तिके चक्रको तथा (अधरीकृतसर्वलोकं) नीचे किया है समस्त लोक जिसने ऐसे (धर्मेन्द्रचक्रं) तीर्थंकर पदको (लब्ध्वा) प्राप्त होकर (शिवं) मोक्षको (उपैति) पाता है ॥ ४१ ॥

इति श्रीसमन्तभद्राचार्यविरचिते रत्नकरण्डकनाम्नि उपासकाध्ययने सम्यग्दर्शनवर्णनं नाम प्रथमः परिच्छेदः ॥ १ ॥

अर्थ—इसप्रकार श्रीसमन्तभद्रस्वामीके रचे हुए रत्नकरण्डनामक श्रावकाचारमें सम्यग्दर्शनके वर्णनवाला प्रथम परिच्छेद पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

आर्या । सम्यग्ज्ञानका लक्षण ।

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात् ।
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥ ४२ ॥

अन्वयार्थौ—(यत्) जो (‘वस्तुस्वरूपं’) वस्तुके स्वरूपको (अन्यूनं) न्यूनतारहित, (अनतिरिक्तं) अधिकतारहित, (च) और (विपरीतात् विना) विपरीततारहित, (याथातथ्यं) जैसाका तैसा, (निःसन्देहं) सन्देहरहित (वेद) जानता है (तत्) उसको (आगमिनः) आगमके ज्ञातापुरुष[2] (ज्ञानं) सम्यग्ज्ञान (आहुः) कहते हैं ॥ ४२ ॥

प्रथमानुयोगका स्वरूप ।

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम् ।
बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥ ४३ ॥

अन्वयार्थौ—(समीचीनः बोधः) सम्यग्ज्ञान जो है सो

---

१ सम्यग्दृष्टी । २ गणधरादिक ।

(अर्थाख्यानं) परमार्थ विषयका अथवा धर्मअर्थकाममोक्षका है कथन जिसमें, (चरितं) एक पुरुषके आश्रय है कथा जिसमें, (पुराणं) त्रेसठ शलाकापुरुषोंका है चरित जिसमें, (अपि) और (पुण्यं) पुण्यका है आश्रय जिसमें तथा (बोधिसमाधिनिधानं) रत्नत्रय और ध्यानका है कोष वा खजाना जिसमें ऐसे (प्रथमानुयोगं) प्रथमानुयोगरूप शास्त्रको जानता है ॥ ४३ ॥

भावार्थ—जिसमें किसी एक उत्तम पुरुषका अथवा त्रेसठशलाका पुरुषोंका पुण्यचरित होता है, उसे प्रथमानुयोग कहते हैं। इस प्रथमानुयोगके शास्त्रोंको उक्त प्रकारका सम्यग्ज्ञान भले प्रकार जानता है।

करणानुयोगका स्वरूप।

लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च ।
आदर्शमिव तथामतिरवैति करणानुयोगं च ॥ ४४ ॥

अन्वयार्थो—(च) और (तथामतिः) उक्त प्रकारका सम्यग्ज्ञान ही (लोकालोकविभक्तेः) लोक अलोकके विभागको, (युगपरिवृत्तेः) युगोके[1] परिवर्त्तनको (च) तथा (चतुर्गतीनां) चारों गतियोंको (आदर्श इव) दर्पणके समान प्रगट करनेवाले (करणानुयोगं) करणानुयोगको (अवैति) जानता है।

चरणानुयोगका स्वरूप।

गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षांगम् ।
चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥ ४५ ॥

---

१ युगोंकी अर्थात् कालकी पलटनको।

अन्वयार्थौ—तथा (सम्यग्ज्ञानं) सम्यग्ज्ञान ही (गृहमेध्यनगाराणां) गृहस्थ और मुनियोंके (चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षांगं) चारित्रकी उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षाके अंगभूत (चरणानुयोगसमयं) चरणानुयोग शास्त्रको (विजानाति) विशेष प्रकारसे जानता है॥ ४५॥

द्रव्यानुयोगका स्वरूप।

जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च।
द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोकमातनुते ॥ ४६ ॥

अन्वयार्थौ—(द्रव्यानुयोगदीपः) द्रव्यानुयोगरूपी दीपक (जीवाजीवसुतत्त्वे) जीव अजीवरूप सुतत्त्वोंको, (पुण्यापुण्ये) पुण्य, पाप (च) और (बन्धमोक्षौ) बंध, मोक्षको (च) तथा (श्रुतविद्यालोकं) भावश्रुतरूपी प्रकाशको (आतनुते) विस्तारता है॥ ४६॥

इति श्रीसमन्तभद्रस्वामिविरचिते रत्नकरण्डकनाम्नि उपासकाध्ययने सम्यग्ज्ञानवर्णनं नाम द्वितीयः परिच्छेदः ॥ २॥

अर्थ—इसप्रकार समन्तभद्रस्वामीके रचे हुए रत्नकरण्डनामक श्रावकाचारमें सम्यग्ज्ञानके वर्णनवाला दूसरा परिच्छेद पूर्ण हुआ॥ २॥

चारित्र धारण करनेकी आवश्यकता।

मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः।
रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः॥ ४७॥

अन्वयार्थौ—(मोहतिमिरापहरणे) दर्शनमोहरूपी अंधकारके नाश होने पर (दर्शनलाभात्) सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिसे (अवाप्तसंज्ञानः) प्राप्त हो गया है सम्यग्ज्ञान जिसको, ऐसा जो (साधुः) सम्यग्दृष्टि जीव है सो (रागद्वेषनिवृत्त्यै) रागद्वेषकी निवृत्तिके लिये (चरणं) सम्यक्चारित्रको (प्रतिपद्यते) धारण करता है॥ ४७॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानकी प्राप्तिके पश्चात् पर-पदार्थोंसे रागद्वेष घटानेकी इच्छासे सम्यग्दृष्टि जीवको हिंसादि पाच पापोंका सर्वथा त्यागरूप वा एकोदेशत्यागरूप बाह्यचारित्र (व्यवहारचारित्र) धारण करना चाहिये।

रागद्वेषनिवृत्तेर्हिंसादिनिवर्त्तना कृता भवति ।
अनपेक्षितार्थवृत्तिः कः पुरुषः सेवते नृपतीन् ॥ ४८ ॥

अन्वयार्थौ—(**रागद्वेषनिवृत्तेः**) रागद्वेषकी निवृत्तिसे (**हिंसादिनिवर्त्तना**) हिंसादि पाच पापोंसे निवृत्त हो जाना (**कृता भवति**) संपादित होता है। क्योंकि (**अनपेक्षितार्थवृत्तिः**) नहीं है आजीविकाकी इच्छा जिसको ऐसा (**कः पुरुषः**) कौन पुरुष है जो (**नृपतीन्**) राजाओंकी (**सेवते**) सेवा करे ? ॥ ४८ ॥

भावार्थ—जैसे जिसको आजीविकाकी इच्छा नहीं होती है वह किसी राजाकी सेवा नहीं करता है, उसी प्रकारसे जिसके रागद्वेष नष्ट हो जाते हैं वह हिंसादि पापोंमें प्रवृत्त नहीं होता है।

चारित्रका स्वरूप।

हिंसानृतचौर्य्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च ।
पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥ ४९ ॥

अन्वयार्थौ—(**हिंसानृतचौर्य्येभ्यः**) हिंसा, असत्य, चोरी (**च**) तथा (**मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां**) मैथुनसेवा और परिग्रह (**एतेभ्यः**) इन पाचों (**पापप्रणालिकाभ्यः**) पापकी प्रणालियोंसे (**विरतिः**) विरक्त होना (**संज्ञस्य**) सम्यग्ज्ञानीका (**चारित्रं**) चारित्र है ॥ ४९ ॥

चारित्रके भेद ।

सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसंगविरतानाम् ।
अनगाराणां विकलं सागाराणां ससंगानाम् ॥ ५० ॥

अन्वयार्थौ—(तत् चरणं) वह चारित्र (सकलं विकलं) सकल और विकल ('द्विभेदरूपं') दो प्रकारका है ('तस्मिन्मध्ये') तिनमेंसे (सर्वसंगविरतानां) समस्त प्रकारके परिग्रहोंसे विरक्त (अनगाराणां) मुनियोंका तो (सकलं) सकल चारित्र है और (ससंगानां) गृहादि परिग्रहसहित (सागाराणां) गृहस्थोंका (विकल) विकल चारित्र (' भवति') है ॥ ५० ॥

श्रावकाचारके भेद ।

गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणगुणशिक्षाव्रतात्मकं चरणम् ।
पञ्चत्रिचतुर्भेदं त्रयं यथासङ्ख्यमाख्यातम् ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थौ—(गृहिणां) गृहस्थोंका (चरणं) चारित्र (अणुगुणशिक्षाव्रतात्मकं) अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रतरूप (त्रेधा) तीन प्रकारका (तिष्ठति) है और ('तत् त्रयं') वह तीन प्रकारका चारित्र (यथासंख्यं)क्रमसे (पञ्चत्रिचतुर्भेदं) पाच, तीन और चार इसप्रकार बारह भेदरूप (आख्यात) कहा गया है ॥ ५१ ॥

अणुव्रतका स्वरूप ।

प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूर्च्छेभ्यः ।
स्थूलेभ्यः पापेभ्यो व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥ ५२ ॥

---

(१) चोवीसप्रकारके। (२) पाच पापोंका सर्वथा त्यागरूप चारित्र । (३) पाच पापोंका एकोदशत्यागरूप । (४) यह ग्रंथ गृहस्थोंके आचारका है, इसकारण मुनिके चारित्रका व्याख्यान न करके एकोदेशत्यागरूप गृहस्थके चारित्रका ही वर्णन किया जाता है ।

अन्वयार्थौ—(प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूर्च्छेभ्यः) हिंसा, असत्य, चोरी, काम (कुशील) और मूर्च्छा अर्थात् परिग्रह ('एभ्यः) इन (स्थूलेभ्यः पापेभ्यः) स्थूल पापोंसे (व्युपरमणं) विरक्त होना (अणुव्रतं) अणुव्रत (भवति) है ॥ २ ॥

अहिंसा अणुव्रतका स्वरुप ।

सङ्कल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्त्वान् ।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥ ५३ ॥

अन्वयार्थौ—(योगत्रयस्य संकल्पात्) मनवचनकायके सकल्पसे और (कृतकारितमननात्) कृत कारित अनुमोदनासे (चरसत्त्वान्) त्रस अर्थात् दोइन्द्रिय, तेन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंको (यत्) जो (न हिनस्ति) नहीं हनता है (तत्) उस क्रियाको (निपुणः) गणधरादि निपुण पुरुष (स्थूलवधाद्विरमणं) स्थूल हिंसासे विरक्त होना अर्थात् अहिंसाणुव्रत (आहुः) कहते है ॥ ५३ ॥

अहिंसाणुव्रतके पाच अतीचार ।

छेदनवन्धनपीडनमतिभारारोपणं व्यतीचाराः ।
आहारवारणापि च स्थूलवधाद्व्युपरतेः पञ्च ॥ ५४ ॥

अन्वयार्थौ—(छेदनवन्धनपीडनं) १ छेदना, २ वाधना, ३ पीड़ा देना, (च) तथा (अतिभारारोपण) ४ बहुत भार लादना, (अपि) और (आहारवारणा) ५ आहार देनेमें त्रुटि करना ('एते' पञ्च) ये पाच (स्थूलवधाद्व्युपरतेः) स्थूलहिंसात्यागके अर्थात् अहिंसाणुव्रतके (व्यतीचारः) अतिचार ('सन्ति') है ॥ ५४ ॥

सत्याणुव्रतका स्वरूप।

स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे।
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणम् ॥ ५५ ॥

अन्वयार्थौ—(यत्) जो (स्थूलं अलीकं) स्थूल झूठ(न वदति) न तो आप बोले और (न परान्) न दूसरोंसे (वादयति) बुलवावे तथा (विपदे) विपत्तिके लिये अर्थात् जिस वचनसे किसीको आपदा आ जावे उसके अर्थ (सत्यं अपि) यथार्थ भी ('न वदति न परान् वादयति') न आप बोले और न दूसरोंसे बुलवावे, (तत्) उसको (सन्तः) सत्पुरुष (स्थूलमृषावादवैरमणं) स्थूल झूठ वचनसे विरक्त होना अर्थात् सत्याणुव्रत(वदन्ति) कहते हैं ॥ ५५ ॥

सत्याणुव्रतके पाच अतीचार।

परिवादरहोभ्याख्या पैशून्यं कूटलेखकरणं च।
न्यासापहारितापि च व्यतिक्रमाः पञ्च सत्यस्य ॥ ५६ ॥

अन्वयार्थौ—(परिवादरहोभ्याख्या) मिथ्या उपदेश देना, किसीके गुप्त रहस्यको प्रगट करना, (पैशून्यं) चुगली वा निंदा करना, (च) तथा (कूटलेखकरणं) झूठी बातें लिखना (अपि च) और (न्यासापहारिता) किसीकी धरोहरको हरना ('एते' पञ्च) ये पाच (सत्यस्य) सत्याणुव्रतके (व्यतिक्रमा) अतीचार) ('सन्ति') हैं ॥ ५६ ॥

---

(१)गणधरादिक। (२) अगविकारभ्रूक्षेपादिसे किसीका गुप्त अभिप्राय जानकर निंदापूर्वक प्रगट करना, इसको साकारमन्त्रभेद भी कहते हैं। (३) किसीने गहने वा रुपये वगैरह अनामत रक्खे हों और लेते समय गिनतीमें उसने भूलसे कुछ कम मागे हों, तो अपने याद रहते हुए भी 'हां इतने ही थे सो ले जाओ' इत्यादि कहना।

अचौर्य्याणुव्रतका स्वरूप ।

निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टं ।
न हरति यन्न च दत्ते तदकृशचौर्य्यादुपारमणम् ॥ ५७ ॥

अन्वयार्थौ—(यत्) जो (निहितं) रक्खे हुए (वा) तथा (पतितं) गिरे हुए (वा) अथवा (सुविस्मृतं) भूले हुए (वा) अथवा (अविसृष्टं) धरोहर रक्खे हुए (परस्वं) परद्रव्यको (न) नहीं (हरति) हरता है (च) और (न) न ('अन्यस्मै') दूसरीको (दत्ते) देता है (तत्) सो (अकृशचौर्य्यात्) स्थूलचोरीसे (उपारमणं) विरक्त होना अर्थात् अचौर्याणुव्रत('भवति') है ॥५८॥

अचौर्य्याणुव्रतके पाच अतीचार ।

चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः ।
हीनाधिकविनिमानं पञ्चास्तेये व्यतीपाताः ॥ ५८ ॥

अन्वयार्थौ—(चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः) चोरीका उपाय बताना, चोरीका द्रव्य लेना, राजाकी आज्ञाका उल्लघन करना, अधिक मूल्यकी वस्तुमें हीन मूल्यकी वस्तु मिलाकर चला देना और (हीनाधिकविनिमानं) नापने तोलनेके गज, बॉट, तराजू आदिक हीनाधिक रखना, ('एते') ये (पञ्च) पॉच (अस्तेये व्यतीपाताः) स्थूलचोरीके त्यागमें अर्थात् अचौर्याणुव्रतमें अतीचार ('सन्ति') हैं ॥ ५९ ॥

परदारनिवृत्तिअणुव्रतका स्वरूप ।

न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च
पापभीतेर्यत् । सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसन्तोषनामापि ॥ ५९ ॥

अन्वयार्थौ—(यत्) जो (पापभीतेः) पापके भयसे (न तु) न तो (परदारान्) परस्त्रीके प्रति (गच्छति) गमन करे (च) और (न परान्) न दूसरोंको (गमयति) गमन करावे (सा) वह (परदारनिवृत्तिः) परस्त्रीत्याग (अपि) तथा (स्वदार-सन्तोषनाम) स्वदारसंतोष नामक अणुव्रत ('भवति') है ॥ ५९ ॥

भावार्थ—जो पुरुष न तो आप परस्त्रीके पास जाता है और न दूसरोंको ले जाता है, उसको परस्त्रीत्यागी वा स्वदारसन्तोषी कहते हैं ॥ ५९ ॥

परस्त्रीत्याग व्रतके पाँच अतीचार।

अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीडाविटत्वविपुलतृषः।
इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पञ्च व्यतीचाराः ॥ ६० ॥

अन्वयार्थौ—(अन्यविवाहाकरणानंगक्रीडाविटत्वविपुल-तृषः) दूसरेका विवाह कराना, कामसेवनके अगोंसे भिन्न अङ्गोंके द्वारा कामक्रीड़ा करना, भण्डवचन बोलना, स्वस्त्रीके सेवनमें भी अतिशय इच्छा रखना, (च) और (इत्वारिकागमनं) व्यभिचारिणी स्त्रीके यहाँ जाना ('एते') ये (पञ्च) पाच (अस्मरस्य) परस्त्रीत्यागके (व्यतीचाराः) अतीचार ('सन्ति') हैं ॥ ६० ॥

परिग्रहपरिमाणव्रतका स्वरूप।

धनधान्यादिग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु निःस्पृहता। परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छापरिमाण-नामापि ॥ ६१ ॥

अन्वयार्थौ—(**धनधान्यादिग्रन्थं**) धनधान्यादि दश प्रकारके परिग्रहको (**परिमाय**) परिमित करके अर्थात् उसका प्रमाण करके कि इतना रक्खेंगे (**ततः अधिकेषु**) उससे अधिकमें (**निःस्पृहता**) इच्छा नहीं रखना (**परिमितपरिग्रहः**) परिग्रहपरिमाणव्रत (**स्यात्**) है तथा यह (**इच्छापरिमाण नाम अपि**) इच्छापरिमाण नामका व्रत भी (**'उच्यते'**) कहा जाता है ॥ ६१ ॥

भावार्थ—आवश्यकीय धनधान्यादि पदार्थोंका परिमाण करके बाकीके छोड देना, इसको परिग्रहपरिमाणव्रत कहते हैं ॥ ६१ ॥

परिग्रहपरिमाणव्रतके पाच अतीचार ।

अतिवाहनातिसंग्रहविस्मयलोभातिभारवहनानि ।
परिमितपरिग्रहस्य च विक्षेपा पञ्च लक्ष्यन्ते ॥ ६२ ॥

अन्वयार्थौ—(**अतिवाहनातिसंग्रहविस्मयलोभातिभारवहनानि**) प्रयोजनसे अधिक सवारी रखना, आवश्यकीय वस्तुओंका अतिशय संग्रह करना, परका विभव देख आश्चर्य्य करना, बहुत लोभ रखना, और बहुत भार लादना, (**'एते'**) ये (**पञ्च**) पांच (**परिमितपरिग्रहस्य**) परिग्रहपरिमाणव्रतके (**विक्षेपाः**) अतीचार (**लक्ष्यन्ते**) कहे जाते हैं ॥ ६२ ॥

पञ्चाणुव्रत धारनेका फल ।

पञ्चाणुव्रतनिधयो निरतिक्रमणाः फलन्ति सुरलोकं ।
यत्रावधिरष्टगुणा दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते ॥ ६३ ॥

अन्वयार्थौ—(**निरतिक्रमणाः**) अतीचाररहित[1] (**पञ्चाणुव्र-**

---

१ दोपरहित ।

तनिधयः) पाच अणुव्रतरूपी निधियां (सुरलोकं) उस स्वर्गलोकको (फलन्ति) फलतीं हैं (यत्र) जिसमें (अवधिः) अवधिज्ञान, (अष्टगुणाः) अणिमा महिमादि आठ ऋद्धिया (च) और (दिव्य-शरीरं) मनोहर शरीर (लभ्यंते) प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥

पञ्चाणुव्रतधारियोंमें जगत्प्रसिद्ध होनेवालोंके नाम।

मातंगो धनदेवश्च वारिषेणस्ततः परः।
नीली जयश्च संप्राप्ता पूजातिशयमुत्तमम् ॥६४॥

अन्वयार्थौ—(मातंगः) अहिंसाणुव्रतमें यमपालनामा चाडाल (च) और (धनदेवः) सत्याणुव्रतमें धनदेव शेठ (ततः परः) तत्पश्चात् अचौर्य्याणुव्रतमें (वारिषेण) श्रेणिक राजाका पुत्र वारिषेण, (नीली) ब्रह्मचर्य्यव्रतमें नीली नामकी वणिक्पुत्री (च) और (जयः) परिग्रहपरिमाणव्रतमें जयकुमार नामा राजपुत्र (उत्तमं पूजातिशयं) उत्तमपूजाके अतिशयको अर्थात् पूज्यपदको (संप्राप्ताः) प्राप्त हुए ॥ ६४ ॥

हिंसादि पाच पापोंमें प्रसिद्ध होनेवालोंके नाम।

धनश्रीसत्यघोषौ च तापसारक्षकावपि।
उपाख्येयास्तथा श्मश्रुनवनीतो यथाक्रमम् ॥ ६५ ॥

अन्वयार्थौ—(धनश्रीसत्यघोषौ) हिंसामें धनश्री नामकी सेठानी, असत्यमें सत्यघोष अर्थात् श्रीभूति नामक पुरोहित (च) और (तापसारक्षकौ) चोरीमें तापसी, कुशीलमें यमदण्ड नामक कोतवाल (अपि) और (तथा) इसीप्रकारसे परिग्रहकी तृष्णामें (श्मश्रुनवनीतः) श्मश्रुनवनीत नामका वैश्य (यथाक्रमं) यथाक्रमसे (उपाख्येयाः) कहे गये हैं ॥ ६५ ॥

श्रावकके अष्ट मूलगुण।

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥ ६६ ॥

अन्वयार्थौ—(मद्यमांसमधुत्यागैः) मद्य मास और मधुके त्याग (सह) सहित (अणुव्रतपञ्चकम्) पाचों अणुव्रतोंको (श्रमणोत्तमाः) श्रेष्ठ मुनिराज (गृहिणां) गृहस्थोंके (अष्टौ) आठ (मूलगुणान्) मूलगुण (आहुः) कहते हैं ॥ ६६ ॥

इति श्रीसमन्तभद्रस्वामिविरचिते रत्नकरण्डकनाम्नि उपासकाध्ययने अणुव्रतवर्णनं नाम तृतीयः परिच्छेदः ॥ ३ ॥

अर्थ—इस प्रकार श्रीसमतभद्रस्वामीके बनाये हुए रत्नकरडश्रावकाचारमें अणुव्रतवर्णनवाला तीसरा परिच्छेद पूर्ण हुआ ॥३॥

तीन गुणव्रतोंके नाम।

दिग्व्रतमनर्थदण्डव्रतं च भोगोपभोगपरिमाणम् ।
अनुबृंहणाद्गुणानामाख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः ॥६७॥

अन्वयार्थौ—(आर्य्याः) श्रेष्ठ पुरुष अर्थात आचार्य (गुणानां) गुणोंके (अनुबृंहणात्) बढानेसे (दिग्व्रतं) दिग्व्रत, (अनर्थदण्डव्रतं) अनर्थदण्डव्रत (च) और (भोगोपभोगपरिमाणं) भोगोपभोगपरिमाण व्रतको (गुणव्रतानि) गुणव्रत (आख्यांति) कहते हैं।

दिग्व्रतका स्वरूप।

दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं वहिर्न यास्यामि ।
इति सङ्कल्पो दिग्व्रतमामृत्यणुपापविनिवृत्त्यै ॥ ६८ ॥

अन्वयार्थौ—(आमृत्यणुपापविनिवृत्त्यै) मरणपर्यन्त सूक्ष्म पापोंकी निवृत्तिके लिये (दिग्वलयं) दिग्वलय अर्थात् दशोंदिशाओंका (परिगणितं कृत्वा) परिमाण करके (अतः वहिः) इससे बाहर (अहं) मैं (न यास्यामि) नहीं जाऊंगा (इति सङ्कल्प) इस प्रकार सङ्कल्प करना निश्चय करना सो (दिग्व्रतं) दिग्व्रत ('अस्ति') है ॥ ६८ ॥

दिग्व्रत धारण करनेकी मर्यादा ।

मकराकरसरिदटवीगिरिजनपदयोजनानि मर्य्यादाः ।
प्राहुर्दिशां दशानां प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ॥६९॥

अन्वयार्थौ—(दशानां) दशों (दिशां) दिशाओंके (प्रति-संहारे) त्यागमें (प्रसिद्धानि) प्रसिद्ध (मकराकरसरिदट-वीगिरिजनपदयोजनानि) समुद्र नदी, अटवी, पर्वत, देश, और योजन, पर्यंतकी (मर्यादाः) मर्य्यादा (प्राहुः) कही है ॥६९॥

दिग्व्रत धारण करनेका फल ।

अवधेर्वहिरणुपापप्रतिविरतेर्दिग्व्रतानि धारयताम् ।
पञ्चमहाव्रतपरिणतिमणुव्रतानि प्रपद्यन्ते ॥ ७० ॥

अन्वयार्थौ—(अवधेः वहिः) मर्य्यादासे बाहर (अणुपापप्र-तिविरतेः) सूक्ष्म पापोंकी निवृत्ति होनेसे (दिग्व्रतानि धारयतां) दिग्व्रतधारियोंके (अणुव्रतानि) अणुव्रत (पञ्चमहाव्रतपरिणतिं) पञ्चमहाव्रतोंकी सदृशताको (प्रपद्यन्ते) प्राप्त हो जाते हैं ॥ ७० ॥

---

(१) मीलोंके सदृश योजनोंके थम । (२) हद । (३) त्याग ।

भावार्थ—दिग्व्रतधारी अपनी की हुई मर्यादामें तो श्रावक हैं, परन्तु मर्यादासे वाहर न जानेसे वहापर कोई भी पाप नहीं करते, इसकारण वे मर्य्यादासे वाहर मुनिके समान सर्वत्यागी हैं ॥ ७० ॥

मर्य्यादाके वाहर गुणव्रत साक्षात् महाव्रत क्यों
नहीं होते ? इसका उत्तर ।

प्रत्याख्यानतनुत्वान्मन्दतराश्चरणमोहपरिणामाः ।
सत्त्वेन दुरवधारा महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते ॥७१॥

अन्वयार्थौ—(**प्रत्याख्यानतनुत्वात्**) प्रत्याख्यानावरणीय-क्रोधमानमायालोभके मंद होनेसे (**मन्दतराः**) अतिशय मदरूप (**चारित्रमोहपरिमाणाः**) चारित्रमोहनीयके परिणाम (**महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते**) महाव्रतकी कल्पना उत्पन्न करते हैं, अर्थात् महाव्रत सरीखे प्रतीत होते हैं । और ('**ते**') वे (**परिणामाः**) भाव (**सत्त्वेन**) सत्तासे (**दुरवधाराः**) वडे कष्टसे जाननेमें आने योग्य (**'सान्ति'**) हैं, अर्थात् वे कपायपरिणाम इतने सूक्ष्म होते है कि उनका अस्तित्व भी कठिनतासे प्रतीत होता है ॥ ७१ ॥

संस्कृतटीका—चरणमोहपरिणामा. भावरूपाश्चारित्रमोहपरिणतय. कल्प्यन्त उपचर्यन्ते । किमर्थ महाव्रतनिमित्त । कथभूता सन्त सत्त्वेन दुरवधारा, अस्तित्वेन महता कष्टेनावधार्यमाणा सन्तोऽपि ते अस्तित्वेन लक्षयतु न शक्यन्त इत्यर्थ । कुतस्ते दुरवधारा ? मन्दतरा अतिशयेनानुत्कटा । मन्दतरत्वमप्येपा कुत. ? प्रत्याख्यानतनुत्वात् प्रत्याख्यानशब्देन प्रत्याख्यानावरणा द्रव्यक्रोधमानमायालोभा गृह्यन्ते । "नामैकदेशे हि प्रवृत्ता शब्दा नाम्न्यपि प्रवर्तन्ते भी-

मादिवत्" प्रत्याख्याने हि साकल्येन हिंसादिविरतिलक्षणः संयमः । तदावृण्वन्ति ये ते प्रत्याख्यानावरणा द्रव्यक्रोधादयः । यदुदये ह्यात्मा कात्स्न्र्यात्तद्विरतिं कर्त्तुं न शक्नोति । अतो द्रव्यरूपाणां क्रोधादीनां तनुत्वान्मन्दोदयत्वाद्भावरूपाणां मन्दतरत्व सिद्धम् । ननु कुतस्ते महाव्रताय कल्प्यन्ते न तु साक्षान्महाव्रतरूपा भवन्तीत्याह ।

महाव्रतका स्वरूप ।

पञ्चानां पापानां हिंसादीनां मनोवचःकायैः ।
कृतकारितानुमोदैस्त्यागस्तु महाव्रतं महताम् ॥ ७२ ॥

अन्वयार्थौ—(**हिंसादीनां**) हिंसादिक (**पञ्चानां**) पांचों (**पापानां**) पापोंका (**मनोवचःकायैः**) मन वचन काय (**तु**) और (**कृतकारितानुमोदैः**) कृत कारित अनुमोदनासे (**त्यागः**) त्याग करना सो (**महतां**) महापुरुषोंका (**महाव्रतं**) महाव्रत है ॥ ७२ ॥

दिग्व्रतके अतीचार ।

ऊर्द्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः क्षेत्रवृद्धिरवधीनाम् ।
विस्मरणं दिग्विरतेरत्याशाः पञ्च मन्यन्ते ॥ ७३ ॥

अन्वयार्थौ—(**ऊर्द्ध्वाधस्तात्तिर्य्यग्व्यतिपाताः**) अज्ञान वा प्रमादसे ऊपरकी, नीचेकी तथा विदिशाओंकी मर्य्यादाका उल्लंघन करना (**क्षेत्रवृद्धिः**) क्षेत्रकी मर्य्यादा बढ़ा लेना और (**अवधीनां विस्मरणं**) की हुई मर्य्यादाओंको भूल जाना ('**एते**') ये (**पञ्च**) पांच (**दिग्विरतेः**) दिग्व्रतके (**अत्याशाः**) अतीचार (**मन्यन्ते**) माने गये हैं ॥ ७३ ॥

अनर्थदण्डव्रतका स्वरूप ।

अभ्यन्तरं दिगवधेरपार्थिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः ।
विरमणमनर्थदण्डव्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः ॥ ७४ ॥

अन्वयार्थौ—(दिगवधेः) दिशाओंकी मर्य्यादाके (अभ्यन्तरं) भीतर भीतर (अपार्थिकेभ्यः) प्रयोजनरहित (सपापयोगेभ्यः) पापके कारणोंसे (विरमणं) विरक्त होनेको (व्रतधराग्रण्यः) व्रतधारियोंमें अग्रगण्य पुरुष (अनर्थदण्डव्रतं) अनर्थदण्डव्रत (विदुः) कहते हैं ॥ ७४ ॥

अनर्थदण्डके पाच भेद ।

पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पञ्च ।
प्राहुः प्रमादचर्य्यामनर्थदण्डानदण्डधराः ॥ ७५ ॥

अन्वयार्थौ—(अदण्डधरा) दण्डको नहीं धरनेवाले गणधरादिक आचार्य (पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः) पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और (प्रमादचर्याम्) प्रमादचर्य्या ('एतान्') इन (पञ्च) पाच (अनर्थदण्डान्) अनर्थदण्डोंको (प्राहुः) कहते हैं ॥ ७५ ॥

पापोपदेशनामा अनर्थदण्ड ।

तिर्य्यक्क्लेशवणिज्याहिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम् ।
कथाप्रसङ्गप्रसवः स्मर्त्तव्यः पाप उपदेशः ॥ ७६ ॥

अन्वयार्थौ—(तिर्यक्क्लेशवणिज्याहिंसारम्भप्रलम्भनादीनां) तिर्यंचोंको क्लेश पहुंचानेवाली तथा वाणिज्य, हिंसा, आरंभ ठगाई आदिकी (कथाप्रसङ्गप्रसवः) कथाओंके प्रसङ्गके उठानेको (पापः उपदेशः) पापोपदेशनामा अनर्थदण्ड (स्मर्त्तव्यः) जानना चाहिये ॥ ७६ ॥

---

(१) तीर्थंकर गणधरादिक । (२) अशुभमनोवचनकायरूप दंड । (३) 'प्रसवकथाप्रसङ्ग' ऐसा भी पाठ है ।

हिंसादाननामा अनर्थदंड ।

परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुधशृङ्गशृङ्खलादीनाम् ।
वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः ॥ ७७ ॥

अन्वयार्थौ—(परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुधशृङ्गशृङ्खलादीनां) फरसा, तलवार, खनित्र[1], अग्नि, आयुध, सींगी, सांकल, आदि (वधहेतूनां) हिंसाके कारणोंके (दानं) देनेको (बुधाः) पंडितजन (हिंसादानं) हिंसादान नामा अनर्थदण्ड (ब्रुवन्ति) कहते हैं ॥ ७७ ॥

अपध्याननामा अनर्थदंड ।

वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः ।
आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः॥७८॥

अन्वयार्थौ—(जिनशासने) जिनमतमें (विशदाः) जो पुरुष निर्मल अर्थात् प्रवीण हैं वे (द्वेषात्) द्वेषसे (च) अथवा (रागात्) रागसे (परकलत्रादेः) अन्यकी स्त्री आदिके (वधबन्धच्छेदादेः) नाश होने, बंधे[2] होने, कट जाने आदिके (आध्यानं) चिंतवन करनेको (अपध्यानं) अपध्याननामा अनर्थदंड (शासति) कहते हैं ॥ ७८ ॥

दुःश्रुतिनामा अनर्थदंड ।

आरम्भसङ्गसाहसमिथ्यात्वद्वेषरागमदमदनैः ।
चेतःकलुषयतां श्रुतिरवधीनां दुःश्रुतिर्भवति ॥ ७९ ॥

---

(१) जमीन खोदनेके अस्त्र फावड़ा खुनीता वगैरह । (२) कैद होने ।

अन्वयार्थौ—(आरम्भसङ्गसाहसमिथ्यात्वद्वेषरागमदनदनैः) आरभ, परिग्रह, साहस, मिथ्यात्व, द्वेष, राग, मद और मदन इनसे (चेतःकलुषयतां) चित्तको मैले करनेवाले (अवधीनां) शास्त्रोका (श्रुतिः) सुनना सो (दुःश्रुतिः) दुःश्रुतिनामा अनर्थदंड (भवति) है ॥ ७९ ॥

प्रमादचर्यानामा अनर्थदंड ।

क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदं ।
सरणं सारणमपि च प्रमादचर्यां प्रभापन्ते ॥८०॥

अन्वयार्थौ—(विफलं) विना प्रयोजन (क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं) पृथिवी, जल, अग्नि और पवनके आरंम करने, (वनस्पतिच्छेद) वनस्पतिके छेदने, (सरणं) पर्यटन करने (च) और (सारणं अपि) दूसरेको पर्यटन करानेको भी (प्रमादचर्यां) प्रमादचर्या नामा अनर्थदंड (प्रभापन्ते) कहते है ॥८०॥

अनर्थदंडव्रतके अतिचार ।

कन्दर्पं कौत्कुच्यं मौखर्यमतिप्रसाधनं पञ्च ।
असमीक्ष्य चाधिकरणं व्यतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरतेः ॥

अन्वयार्थौ—(कन्दर्पं) रागसे हास्यमिश्रित भंडवचन बोलना, (कौत्कुच्यं) कायकी कुचेष्टा करना, (मौखर्यं) वृथा बकवाद करना, (अतिप्रसाधनं) व्यर्थ ही भोगउपभोगकी सामग्री बढाना, (च) और (असमीक्ष्य अधिकरणं) प्रयोजनकी जाच किये विना ही करना अथवा प्रयोजन रहित अधिकताके साथ मनवचनकायको प्र-

(१) गर्व । (२) कामदेव ।

चर्तोना ('एते') ये (पञ्च) पाच (अनर्थदण्डकृद्विरतेः) अनर्थद-ण्डत्याग नामक गुणव्रतके (व्यतीतयः) अतीचार ('सन्ति') हैं ८१

भोगोपभोगपरिमाणव्रतका स्वरूप ।

अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम् ।
अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये ॥ ८२ ॥

अन्वयार्थौ—(रागरतीनां) रागादिभावोंको (तनूकृतये) घटानेके अर्थ (अवधौ अपि) परिग्रहपरिमाणव्रतकी मर्यादामें भी (अर्थवतां[1]) प्रयोजनभूत(अक्षार्थानां)इन्द्रियोंके विषयोंका ('नित्यं') प्रतिदिन (परिसंख्यानं) परिमाण करना (भोगोपभोगपरिमाणं) भोगोपभोगपरिमाण व्रत ('उच्यते') कहा जाता है॥८२॥

भोग और उपभोगका निर्णय ।

भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः ।
उपभोगोऽशनवसनप्रभृतिः पञ्चेन्द्रियो विषयः ॥८३॥

अन्वयार्थौ—(अशनवसनप्रभृतिः) भोजन वस्त्रादिक (पञ्चेन्दियः विषयः) पचेंद्रियसंबंधी विषय जो (भुक्त्वा)भोग करके (परिहातव्यः) फिर त्याग किये जाते हैं अर्थात् फिर नहीं भोगे जाते हैं वे तो (भोगः) भोग है (च) और (भुक्त्वा) भोग करके (पुनः भोक्तव्यः) फिर भी भोगने योग्य हों वे (उपभोगः) उपभोग ('अस्ति') हैं ॥ ८३ ॥

---

(१) 'श्रावकोंको' ऐसा भी अर्थ होता है ।

भोगोपभोगपरिमाणव्रतमें विशेष त्याग।

त्रसहतिपरिहरणार्थं क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये।
मद्यं च वर्जनीयं जिनचरणौ शरणमुपयातैः॥ ८४॥

अन्वयार्थौ—(जिनचरणौ शरणं उपयातैः) जिनेन्द्रभगवानके चरणोंकी शरणमें आनेवाले मनुष्यों करके (त्रसहतिपरिहरणार्थं) त्रस जीवोंकी हिंसाके निवारणार्थ (क्षौद्रं) मधु, (पिशितं) मांस (च) और (प्रमादपरिहृतये) प्रमाद दूर करनेके लिये(मद्यं) मदिरा (वर्जनीयम्) त्याग देने योग्य है॥ ८४॥

अल्पफलबहुविघातान्मूलकमार्द्राणि शृङ्गवेराणि।
नवनीतनिम्बकुसुमं कैतकमित्येवमवहेयम्॥ ८५॥

अन्वयार्थौ—(अल्पफलबहुविघातात्) फल थोड़ा परन्तु त्रसहिंसा अधिक होनेसे (आर्द्राणि) गीले अर्थात् सचित्त (शृङ्गवेराणि) अदरख, (मूलकं) मूली, गाजर, (नवनीतनिम्बकुसुमं) मक्खन, नीमके पुष्प, (कैतकं) केतकीके फूल (इति एवं) इत्यादि सब वस्तुएं (अवहेयं) छोडने योग्य हैं॥ ८५॥

व्रतका लक्षण।

यदनिष्टं तद्व्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात्।
अभिसन्धिकृता विरतिर्विषयाद्योग्याद्व्रतं भवति॥८६॥

अन्वयार्थौ—(यत्) जो (अनिष्टं) अनिष्ट अर्थात् हानिकारक है (तत्) वह (व्रतयेत्) छोडे (च) तथा (यत्) जो (अनुप-

---

(१) विना पके हुए अप्रासुक। (२) उपलक्षणसे अन्य सब प्रकारके फूल भी अभक्ष्य समझना चाहिये।

सेव्यं) उत्तमकुलके सेवन करने योग्य नहीं (एतदपि) वह भी (जह्यात्) छोडे, क्योंकि (योग्यात् विषयात्) योग्य विषयोंसे (अभिसन्धिकृता) अभिप्रायपूर्वक किया हुआ (विरतिः) त्याग (व्रतं) व्रत (भवति) है ॥ ८६ ॥

यमनियमरूपव्रतका स्वरूप ।

नियमो यमश्च विहितौ द्वेधा भोगोपभोगसंहारे ।
नियमः परिमितकालो यावज्जीवं यमो ध्रियते ॥ ८७ ॥

अन्वयार्थौ—(भोगोपभोगसंहारे) भोगोपभोगके त्यागमें (नियमः) नियम (च) और (यमः) यम (द्वेधा) दो प्रकारका त्याग (विहितौ) विधान किया गया है । जिस त्यागमें (परिमितकालः) कालकी मर्यादा है वह तो (नियमः) नियम है और जो (यावज्जीवं) जीवनपर्यन्त (ध्रियते) धारण किया जाता है वह (यमः) यम है ॥ ८७ ॥

नियम करनेकी विधि ।

भोजनवाहनशयनस्नानपवि रागकुसुमेषु ।
ताम्बूलवसनभूषणमन्मथसंगीतगीतेषु ॥ ८८ ॥

अद्य दिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथर्तुरयनं वा ।
इति कालपरिच्छित्त्या प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः॥८९॥

अन्वयार्थौ—(भोजनवाहनशयनस्नानपवित्राङ्गरागकुसुमेषु) भोजन, सवारी, शयन, स्नान, कुंकुमादि लेपन, (ताम्बूलवसनभूषणमन्मथसङ्गीतगीतेषु), ताम्बूल, वस्त्र, अलङ्कार, कामभोग, सगीत[1] और गीत इन विषयोंमें (अद्य) घड़ी, पहर, (दिवा) एक दिन (वा) अथवा (रजनी) एक रात, (पक्षः) एक पक्ष (मासः) अथवा एक मास, (तथा) तैसे ही (ऋतुः) दो मास (वा) अथवा (अयनं) छह मास (इति) इस प्रकार (कालपरिच्छित्त्या) कालके विभागसे (प्रत्याख्यानं) त्याग करना सो (नियमः) नियम (भवेत्) है ॥ ८८–८९ ॥

भोगोपभोगपरिमाणव्रतके अतीचार ।

विषयविषतोऽनुपेक्षानुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषाऽनुभवो । भोगोपभोगपरिमाव्यतिक्रमा पञ्च कथ्यन्ते ॥ ९० ॥

अन्वयार्थौ—(विषयविषतः) विषयरूपी विषसे (अनुपेक्षा) उपेक्षा नहीं करना अर्थात् विषयोंसे प्रेम रखना, (अनुस्मृतिः) पूर्वकालके भोगे हुए विषयोंका स्मरण करना, (अतिलौल्यम्) वर्त्तमानके विषयभोगनेमें अतिशय लालसा रखना, (अतितृषा) भविष्यतमें विषय प्रा-

---

(१) नृत्यवादित्र सहित गाना ।

तिकी अतिशय तृष्णा रखना और (अनुभवः) विषय नहीं भोगते हुए भी विषय भोगता हूँ ऐसा अनुभव करना ('एते' पञ्च) ये पांच (भोगोपभोगपरिमाण्यतिक्रमः) भोगोपभोगपरिमाण नामक गुणव्रतके अतीचार (कथ्यन्ते) कहे जाते हैं ॥ ९० ॥

इति श्रीसमन्तभद्रस्वामिविरचिते रत्नकरण्डकनाम्नि उपासकाध्ययने गुणव्रतवर्णनं नाम चतुर्थः परिच्छेदः ॥ ४ ॥

अर्थ—इसप्रकार श्रीसमन्तभद्रस्वामीकृत रत्नकरण्डनामके श्रावकाचारमें गुणव्रतवर्णन नामका चौथा परिच्छेद पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

चार शिक्षाव्रतोंके नाम।

देशावकाशिकं वा सामयिकं प्रोषधोपवासो वा।
वैयावृत्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिष्टानि ॥ ९१ ॥

अन्वयार्थौ—(देशावकाशिकं) देशावकाशिक, (वा) तथा (सामयिकं) सामायिक, (प्रोषधोपवासः) प्रोषधोपवास (वा) और (वैयावृत्यं) वैयावृत्य ('एतानि' चत्वारि) ये चार (शिक्षाव्रतानि) शिक्षाव्रत (शिष्टानि) कहे गये हैं ॥ ९१ ॥

देशावकाशिकनाम शिक्षाव्रत।

देशावकाशिकं स्यात्कालपरिच्छेदनेन देशस्य।
प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य ॥ ९२ ॥

अन्वयार्थौ—(विशालस्य देशस्य) दिग्व्रतमें परिमाण किये हुए विशाल देशका (कालपरिच्छेदनेन) कालके विभागसे (प्रत्यहं) प्रतिदिन (प्रतिसंहारः) त्याग करना है सो (अणुव्रतानां

अणुव्रतधारियोंका (देशावकाशिकं) देशावकाशिक व्रत (स्यात्) होता है ॥ ९२ ॥

देशावकाशिक व्रतके क्षेत्रकी मर्यादा ।

गृहहारिग्रामाणां क्षेत्रनदीदावयोजनानां च ।
देशावकाशिकस्य स्मरन्ति सीमा तपोवृद्धाः ॥ ९३ ॥

अन्वयार्थौ—(**तपोवृद्धाः**) तपसे वृद्धरूप जे गणधरादिक हैं ते (**देशावकाशिकस्य**) देशावकाशिकके क्षेत्रकी (**सीमां**) मर्यादा (**गृहहारिग्रामाणां**) अमुक घर, गली अथवा कटक, छावनी, ग्राम (**च**) तथा (**क्षेत्रनदीदावयोजनान**) खेत, नदी, वन और योजनतककी (**स्मरन्ति**) स्मरण करते हैं, अर्थात् कहते हैं ॥ ९३ ॥

देशावकाशिक व्रतके कालकी मर्यादा ।

संवत्सरमृतुरयनं मासचतुर्मासपक्षमृक्षं च ।
देशावकाशिकस्य प्राहुः कालावधिं प्राज्ञाः ॥ ९४ ॥

अन्वयार्थौ—(**प्राज्ञाः**) गणधरादिक ज्ञानी पुरुष (**देशावकाशिकस्य**) देशावकाशिक व्रतकी (**संवत्सरम्**) एक वर्ष, (**ऋतु**) दो मास, (**अनय**) छह मास, (**मासचतुर्मासपक्षं**) एकमास चतुर्मास, पक्ष (**च**) और (**ऋक्षं**) नक्षत्रेतक (**कालावधि**) कालमर्यादा (**प्राहुः**) कहते है ॥ ९४ ॥

---

(१) पहले समयमें प्रसिद्ध मार्गोमें एक योजनकी दूरीपर एक एक थंभ हुआ करता था, जैसे कि आजकल मील होते हैं । (२) चन्द्रभुक्ति वा आदित्यभुक्तिकालपर्यन्त ।

देशावकाशिक शिक्षाव्रतकी सार्थकता ।

सीमान्तानां परतः स्थूलेतरपञ्चपापसंत्यागात् ।
देशावकाशिकेन च महाव्रतानि प्रसाध्यन्ते ॥ ९५ ॥

अन्वयार्थौ—(सीमान्तानां परतः) सीमाओंके परे (स्थूलेतर-पञ्चपापसंत्यागात्) स्थूलसूक्ष्मरूप पाचों पापोंका भलेप्रकार त्याग होनेसे (देशावकाशिकेन च) देशावकाशिकव्रतीके द्वारा भी (महाव्रतानि) महाव्रत (प्रसाध्यन्ते) साधे जाते हैं ॥ ९५ ॥

देशावकाशिक शिक्षाव्रतके पांच अतीचार ।

प्रेषणशब्दानयनं रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ ।
देशावकाशिकस्य व्यपदिश्यन्तेऽत्ययाः पञ्च ॥ ९६ ॥

अन्वयार्थौ—(प्रेषणशब्दानयनं) मर्यादाके वाहर भेजना, शब्द करना, मगाना, (रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ) अपना रूप दिखाकर समस्या करना, और कंकर पत्थर फेंकना ('एते' पञ्च) ये पाच (देशावकाशिकस्य) देशावकाशिक व्रतके (अत्ययाः) अतीचार (व्यपदिश्यन्ते) कहे जाते हैं ॥ ९६ ॥

सामायिक शिक्षाव्रत ।

आसमयमुक्ति मुक्तं पञ्चाघानामशेषभावेन ।
सर्वत्र च सामयिकाः सामायिकं नाम शसन्ति ॥९७॥

अन्वयार्थौ—(अशेषभावेन) मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदना करके (सर्वत्र) मर्यादा और मर्यादाके वाहर भी (आस-

---

(१) इशारा ।

मयमुक्ति)किसी नियतसमयपर्यन्त(पञ्चाघानां)पाचों पापोंके (मुक्तं) त्याग करनेको (सामायिकाः) शास्त्रज्ञ अर्थात् गणधरादिक(सामयिकं नाम) सामायिक नामसे (शंसन्ति) कहते है ॥ ९७ ॥

सामायिककी विधि ।

मूर्धरुहमुष्टिवासोवन्धं पर्य्यंकवन्धनं चापि ।
स्थानमुपवेशनं वा समयं जानन्ति समयज्ञाः ॥९७॥

अन्वयार्थौ—(समयज्ञाः) ज्ञानी पुरुष (मूर्धरुहमुष्टिवासोवन्ध) चोटीके वाल, मूठी वा वस्त्रके बांधनेको(च)तथा (पर्यङ्कवन्धनं) पलाठी मारने वा कायोत्सर्गको (अपि) और (स्थानं) स्थान, (उपवेशनं) उपवेशन (वा) अथवा (समयं) सामायिक करनेयोग्य समयको (जानन्ति) जानते हैं ॥ ९८ ॥

सामायिक करनेयोग्य स्थानका निर्देश ।

एकान्ते सामयिकं निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च ।
चैत्यालयेषु वापि परिचेतव्यं प्रसन्नधिया ॥९९॥

अन्वयार्थौ—(निर्व्याक्षेपे) उपद्रवरहित (एकान्ते) एकान्तमें (च) तथा (वनेषु) वनोमें (वा) अथवा (वास्तुषु) घर अथवा धर्मशालाओंमें (च) और (चैत्यालयेषु अपि) चैत्यालयोंमे गिरिगह्वरादिकोंमें भी (प्रसन्नधिया) प्रसन्नचित्तसे (सामयिकं) सामायिक (परिचेतव्यं) वढ़ाना चाहिये, अर्थात् धारण करना चाहिये ॥ ९९ ॥

---

(१) आत्माके अथवा शास्त्रके जाननेवाले । (२) चित्तव्याकुलतारहित अर्थात् शीत वात दशमशकादि वाधारहित । (३) जिनमंदिरोंमें ।

व्यापारवैमनस्याद्विनिवृत्त्यामन्तरात्मविनिवृत्त्या ॥
सामयिकं बध्नीयादुपवासे चैकभुक्ते वा ॥ १०० ॥

अन्वयार्थौ—(व्यापारवैमनस्यात्) कायादि चेष्टा और मनोव्यग्रतासे (विनिवृत्त्या) निवृत्ति होनेपर (अन्तरात्मविनिवृत्त्या) मनके विकल्पोंकी विशेष निवृत्ति करके (उपवासे) उपवासके दिन (च) और (एकभुक्ते वा) एकाशनके दिन (सामयिकं) सामायिक (बध्नीयात्) करे ॥ १०० ॥

हेतुपूर्वक प्रतिदिन सामायिक करनेका उपदेश ।

सामयिकं प्रतिदिवसं यथावदप्यनलसेन चेतव्यं ।
व्रतपञ्चकपरिपूरणकारणमवधानयुक्तेन ॥ १०१ ॥

अन्वयार्थौ—(सामायिकं) सामायिक (व्रतपञ्चकपरिपूरणकारणम्) पचमहाव्रतोंके परिपूरण करनेका कारण है ('अतएव') इसलिये उसे (प्रतिदिवसं) प्रतिदिन ही (अनलसेन) आलस्यरहित (अपि) और (अवधानयुक्तेन) एकाग्रचित्तमे (यथावत्) यथानियम (चेतव्यं) बढाना चाहिये ॥ १०१ ॥

सामायिकको शिक्षाव्रतपना ।

सामयिके सारम्भाः परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि ।
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभाव ॥ १०२ ॥

अन्वयार्थौ—(सामायिके) सामायिकमें (सारम्भाः) आरम्भ सहित (सर्वे अपि) सब ही प्रकारके (परिग्रहाः) परिग्रह (न एव)

नहीं (सन्ति) होते हैं ('अतएव') इस कारण (तदा) उस समय (गृही) गृहस्थ (चेलोपसृष्टमुनिः इव) उपसर्गसे ओढ़े हुए कपडेसहित मुनिकी तरह (यतिभावं) मुनिपनेको (याति) प्राप्त होता है ॥ १०२ ॥

सामायिकमें परीषह सहनेका उपदेश ।

शीतोष्णदंशमशकपरीषहमुपसर्गमपि च मौनधराः ।
सामयिकं प्रतिपन्ना अधिकुर्वीरन्नचलयोगाः ॥

अन्वयार्थौ—(सामयिकं) सामायिकको (प्रतिपन्नाः) प्राप्त होनेवाले (मौनधराः) मौनधारी (अचलयोगाः ' सन्तः ') अचल योग होते हुए (शीतोष्णदंशमशकपरीषहं) शीत उष्ण डास मच्छर आदिकी परीषहको (च) और (उपसर्गं अपि) उपसर्गको भी (अधिकुर्वीरन्) सहन करते हैं ॥ १०३ ॥

सामायिक करते समय क्या विचार करना चाहिये ।

अशरणमशुभमनित्यं. दुःखमनात्मानमावसामि भवम् ।
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामयिके ॥ १०४ ॥

अन्वयार्थौ—('अहं') मैं (अशरण) अशरणरूप (अशुभं) अशुभरूप, (अनित्यं) अनित्य, (दुःखम्) दुःखमय और (अनात्मानं) पररूप (भवं) ससारमें (आवसामि) निवास करता हू और (मोक्षः) मोक्ष (तद्विपरीतात्मा)

उससे विपरीत है (इति)[1] इसप्रकार (सामयिके) सामायिकमें (ध्यायन्तु) ध्यान करना चाहिये ॥ १०४ ॥

सामायिकके पांच अतीचार ।

वाक्कायमानसानां दुःप्रणिधानान्यनादरस्मरणे ।
सामयिकस्यातिगमा व्यज्यन्ते पञ्च भावेन ॥ १०५ ॥

अन्वयार्थौ—(वाक्कायमानसानां) वचन काय और मनका (दुःप्रणिधानानि) चलायमान करना, (अनादरस्मरणे) सामायिकमें अनादर करना और सामायिकका काल व पाठका भूलजाना ('एवं') इसप्रकार (भावेन) परमार्थसे (सामयिकस्य) सामायिकके (पञ्च) पांच (अतिगमाः) अतीचार (व्यज्यन्ते) प्रगट किये जाते हैं ॥ १०५ ॥

प्रोपधोपवास शिक्षाव्रत ।

पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोपधोपवासस्तु ।
चतुरभ्यवहार्य्याणां प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः ॥१०६॥

अन्वयार्थौ—(तु) और (पर्वणि) चतुर्दशी (च) तथा (अष्टम्यां) अष्टमीके दिन (सदा) सर्वकाल (इच्छाभिः) व्रतविधानकी वांछाओंसे (चतुरभ्यवहार्याणां) चार प्रकारके आहार्य्य पदार्थोंके (प्रत्याख्यानं) त्याग करनेको (प्रोपधोपवासः) प्रोपधोपवास (ज्ञातव्यः) जानना चाहिये ॥ १०६ ॥

---

(१) 'सदिच्छाभिः' ऐसा भी पाठ है, जिसका अर्थ 'समीचीन भावोंसे' ऐसा होता है ।

प्रोपधोपवासके दिन क्या क्या त्याग करना चाहिये ।

पञ्चानां पापानामलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम् ।
स्नानाञ्जननस्यानामुपवासे परिहृतिं कुर्य्यात् ॥१०७॥

अन्वयार्थौ—(उपवासे) उपवासके दिन (पञ्चानां पापानां) हिंसादि पाचों पापोंका, (अलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणां) शृंगार, आरभ, गन्ध, पुष्प, (स्नानाञ्जननस्यानां) और स्नान, अञ्जन तथा नस्य अर्थात् नाकसे सूघनेकी वस्तुओंका (परिहृतिं) त्याग (कुर्य्यात्) करै ॥ १०७ ॥

उपवासके दिनका कर्त्तव्य ।

धर्मामृतं सतृष्णः श्रवणाभ्यां पिवतु पाययेद्वान्यान् । ज्ञानध्यानपरो वा भवतूपवसन्नतन्द्रालुः ॥ १०८ ॥

अन्वयार्थौ—(उपवसन्) उपवास करके (अतन्द्रालुः) आलस्यरहित हो (श्रवणाभ्यां) कानोसे (सतृष्णः ' सन् ') अतिशय उत्कठित होता हुआ (धर्मामृतं) धर्मरूपी अमृतको (पिवतु) पीवै (वा) तथा (अन्यान्) दूसरोंको (पाययेत्) पिलावै (वा) अथवा (ज्ञानध्यानपरः) ज्ञानध्यानमें तत्पर (भवतु) होवै ॥ १०८ ॥

चतुराहारविसर्ज्जनमुपवासः प्रोपधः सकृद्भुक्तिः ।
स प्रोपधोपवासो यदुपोष्यारम्भमाचरति ॥ १०९ ॥

---

(१) और उपलक्षणसे रागके उत्पन्न करनेवाले गीत नृत्यादिकोंका भी त्याग करै ।

अन्वयार्थौ—(चतुराहारविसर्जनम्) अशन=दालभात आदिक, पान=पीने योग्य दूध मठा आदि, खाद्य=मोदकादि और लेह्य=रवड़ी आदि, ऐसे इन चार प्रकारके आहारोंका त्याग करना (उपवासः) उपवास है तथा (सकृद्भुक्तिः) एक वार भोजन करना (प्रोषधः) प्रोषध है और धारनेके दिन एक वार भोजनपूर्वक (यत्) जो (उपोष्य) उपवास करके (आरम्भं) पारनेके दिन आरम्भ अर्थात् एकाशन (आचरति) करता है (सः) सो (प्रोषधोपवासः) प्रोषधोपवास ('कथ्यते') कहा जात । है ॥ १०९ ॥

प्रोषधोपवासके पांच अतीचार ।

ग्रहणविसर्गास्तरणान्यदृष्टमृष्टान्यनादरास्मरणे ।
यत्प्रोषधोपवासव्यतिलङ्घनपञ्चकं तदिदम् ॥ ११० ॥

अन्वयार्थौ—(यत्) जो (अदृष्टमृष्टानि) विना देखे विना शोधे (ग्रहणविसर्गास्तरणानि)पूजाके उपकरण ग्रहण करना, मलमूत्रादिका त्याग करना, सन्थारा विछाना, अनादर करना और योग्य क्रियाओंका भूल जाना है (तत्) सो (अनादरास्मरणे) उपवासमें (इदं) यह (प्रोषधोपवासव्यतिलङ्घनपञ्चकं) प्रोषधोपवासका अतीचार पचक ('अस्ति') है, अर्थात् ये प्रोषधोपवासके पांच अतीचार हैं ॥ ११० ॥

वैयावृत्त्य नामक शिक्षाव्रत ।

दानं वैयावृत्त्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये ।
अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन ॥१११॥

अन्वयार्थौ—(गुणनिधये) सम्यक्त्वादि गुणोंके भंडार (अ-

गृहाय) गृहरहित (तपोधनाय) तपस्वियोंको (विभवेन), विधि-द्रव्यादि सपदा करके (धर्माय) धर्मके अर्थ (अनपेक्षितोपचारोपक्रियं) प्रत्युपकारकी अपेक्षाके विना (दानं) दान देना (वैयावृत्त्यं) वैयावृत्त्य ('उच्यते') कहा जाता है ॥ १११ ॥

व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात् ।
वैयावृत्त्य यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम् ॥११२ ॥

अन्वयार्थौ—(गुणरागात्) गुणोंमें अनुरागपूर्वक (संयमिनां) सयमी जनोंके (व्यापत्तिव्यपनोदः) खेदका दूर करना (च) और (पदयोः) चरणोंका (संवाहनं)दावना अर्थात् पगचपी करना तथा (अन्यः अपि) और भी (यावान्) जितना (उपग्रहः) उपकार करना है सो (वैयावृत्त्यं) वैयावृत्त्य ('कथ्यते') कहा जाता है ॥ ११२ ॥

दानका स्वरूप ।

नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन ।
अपसूनारम्भाणामार्याणामिष्यते दानम् ॥ ११३ ॥

अन्वयार्थौ—(सप्तगुणसमाहितेन) सप्तगुणसहित (शुद्धेन 'श्रावकेन') शुद्धश्रावक करके (अपसूनारम्भाणां) पचसूनाके आरम्भ रहित अर्थात् जो कूटने, पीसने, चूल्हा सुलगाने, पानी भरने और बुहारी देनेका आरम्भ नहीं करते हैं, ऐसे (आर्याणाम्) मुनि-

---

(१) श्रद्धा तुष्टिर्भक्तिर्विज्ञानमलुब्धता क्षमासत्त्व ।
यस्यैते सप्तगुणास्तं दातार प्रशसन्ति ॥ १ ॥

अर्थात् जिसमें श्रद्धा, सतोष, भक्ति, ज्ञान, अलुब्धता, क्षमा, और शक्ति ये सात गुण हों, वह दातार प्रशसा करनेके योग्य है ।

योंका (नवपुण्यैः) नवधा भक्तिसे (प्रतिपत्तिः) गौरव करना वा आहार आदि देना (दानं) दान (इष्यते) कहा जाता है ॥ ११३ ॥

दानका फल ।

गृहकर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहवि-
मुक्तानाम् । अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते
वारि ॥ ११४ ॥

अन्वयार्थौ—('यथा') जैसे (वारि) जल (अलं) निश्चय करके (रुधिरं) रुधिरको (धावते) धो देता है ('तथा') तैसे ही (गृहविमुक्तानां) गृहरहित (अतिथीनां) अतिथियोंका (प्रतिपूजा अपि) प्रतिपूजन करना अर्थात् नवधा भक्तिपूर्वक आहार दान देना भी (खलु) निश्चय करके (गृहकर्मणा) घरके कार्योंसे (निचितं) सचित किये हुए (कर्म) पाप (विमार्ष्टि) नष्ट करता है ॥ ११४ ॥

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा ।
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु ॥ ११५ ॥

अन्वयार्थौ—(तपोनिधिषु)तपस्वी मुनियोंमें (को) (प्रणतेः) नमस्कार करनेसे (उच्चैर्गोत्रं) उच्चगोत्र, (दानात्) दान देनेसे (भोगः) भोग, (उपासनात्) उपासना करनेसे (पूजा) प्रतिष्ठा, (भक्तेः) भक्ति करनेसे (सुन्दररूपं) सुन्दर रूप और (स्तवनात्) स्तुति करनेसे (कीर्तिः) कीर्ति ('भवति') होती है ॥ ११५ ॥

क्षितिगतमिववटबीजं पात्रगतं दानमल्पमपि काले ।

---

१ पडिगाहना, उच्चस्थान देना, पादोदक अर्थात चरणोदकको मस्तकमे लगाना, पूजा करना, प्रणाम करना, मन वचन और कायकी शुद्धि रखना और एषणशुद्धि अर्थात शुद्ध आहार देना ये नवधा भक्तिया है ।

फलतिच्छायाविभवं वहुफलमिष्टं शरीरभृतां ॥ ११६॥

अन्वयार्थौ—(शरीरभृतां) जीवोंको (पात्रगतं) पात्रमें गया हुआ अर्थात् मुनि अर्जिका आदिके लिये दिया हुआ (अल्प अपि दानं) थोडासा भी दान (काले) समय पर (क्षितिगतं) पृथ्वीमें प्राप्त हुए (वटवीजं) वटके वीजके (छायाविभवं इव) छायाके विभवकी तरह (इष्टं) मनवाछित (वहुफलं) वहुत फलको (फलति) फलता है ॥ ११६ ॥

दानके भेद ।

आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन ।
वैयावृत्त्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः ॥ ११७ ॥

अन्वयार्थौ—(चतुरस्राः) चार ज्ञानके धारक गणधर (आहारौषधयोः) आहार और औषधके (अपि) तथा (उपकरणावासयोः च) ज्ञानके साधन शास्त्रादि उपकरणके और स्थानके (दानेन) देनेसे (चतुरात्मत्वेन) चार प्रकारका (वैयावृत्त्यं) वैयावृत्त्य (ब्रुवते) कहते हैं ॥ ११७ ॥

दानके प्रसिद्ध फलभोक्ता ।

श्रीषेणवृषभसेने कौण्डेशः शूकरश्च दृष्टान्ताः ।
वैयावृत्त्यस्यैते चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः ॥ ११८ ॥

अन्वयार्थौ—(श्रीषेणवृषभसेने) श्रीषेण राजा और सेठकी पुत्री वृषभसेना आहार और औषधदानमें, (कौण्डेशः) कौण्डेश नामक कोटपाल शास्त्रदानमें (च) और (शूकरः) शूकर मुनिकी रक्षा करनेसे आवासदानमें (एते) इस प्रकार ये चार (चतुर्विकल्पस्य) चार प्रकारके (वैयावृत्त्यस्य) वैयावृत्त्यके (दृष्टान्ताः) दृष्टान्त (मन्तव्याः) मानने चाहिये ॥ ११८ ॥

वैयावृत्यके भेदमें ही भगवत्पूजा करना।

देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणम् ।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यं ॥ ११९ ॥

अन्वयार्थौ—(**कामदुहि**) इच्छित फल देनेवाले और (**कामदाहिनि**) कामबाणको भस्म करनेवाले (**देवाधिदेवचरणे**) देवोंके अधिदेव अर्थात् अरहत भगवान्के चरणोंमें (**परिचरणं**) पूजा करना (**सर्वदुःखनिर्हरणं**) समस्त दु.खोंका नाश करनेवाला है, ('**अत एव**') इस कारण इसे (**आदृतः**) आदरपूर्वक (**नित्यं**) प्रतिदिन ही (**परिचिनुयात्**) करना चाहिये ॥ ११९ ॥

पूजाके फलका प्रसिद्ध मौका।

अर्हच्चरणसपर्यामहानुभावं महात्मनामवदत् ।
भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥ १२० ॥

अन्वयार्थौ—(**अर्हच्चरणसपर्यामहानुभावं**) भगवानके चरणोंकी पूजाके माहात्म्यको (**राजगृहे**) राजगृही नगरीमें (**एकेन कुसुमेन**) एक पुष्प करके (**प्रमोदमत्तःसन्**) प्रमोदमें मत्त होता हुआ (**भेकः**) मेंडक (**महात्मनां**) महापुरुषोंको (**अवदत्**) देवपर्याय प्राप्त होकर कहता हुआ, अर्थात् दिखाता हुआ ॥ १२०

भावार्थ—मेंडकने भगवान्को फूल चढानेकी इच्छा करके और उसके प्रसादसे स्वर्ग प्राप्त करके प्रगट कर दिया कि भगवानकी पूजा करनेका कैसा माहात्म्य है।

वैयावृत्यके अतीचार।

हरितपिधाननिधाने ह्यनादरास्मरणमत्सरत्वानि ।
वैयावृत्यस्यैते[1] व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥ १२१ ॥

---

१ 'वैयावृत्तस्य' ऐसा भी पाठ है।

अन्वयार्थौ—(हरितपिधाननिधाने) दान देनेवाली वस्तुको हरितपत्रसे ढकना, और हरितपत्रमे रखना, (अनादरास्मरणमत्सरत्वानि) अनादरसे देना, दानकी विधि वगैरह भूल जाना, और ईर्षाबुद्धिसे देना (हि) निश्चयकरके (एते पञ्च) ये पाच (वैयावृत्त्यस्य) वैयावृत्त्यके (व्यतिक्रमाः) अतीचार (कथ्यन्ते) कहे जाते हैं ॥ १२१ ॥

इति श्रीसमन्तभद्रस्वामिविरचिते रत्नकरण्डकनाम्नि उपासकाध्ययने शिक्षाव्रतवर्णनं नाम पञ्चमः परिच्छेदः समाप्तः ॥ ५ ॥

अर्थ–इसप्रकार श्रीसमन्तभद्रस्वामीके रचे हुए रत्नकरण्ड नामके श्रावकाचारमें शिक्षाव्रतके वर्णनवाला पाचवॉ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

सल्लेखनाका स्वरूप ।

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे ।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥ १२२ ॥

अन्वयार्थौ—(आर्याः) गणधरादिक श्रेष्ठ पुरुष (निःप्रतीकारे) उपायरहित (उपसर्गे) उपसर्ग आनेपर, (दुर्भिक्षे) दुर्भिक्ष होनेपर, (जरसि) बुढ़ापा आनेपर, (च) और (रुजायां) रोग होनेपर (धर्माय) धर्मके अर्थ (तनुविमोचनं) शरीरके छोड़नेको (सल्लेखनां) सल्लेखना (आहुः) कहते हैं ॥ १२२ ॥

सल्लेखनाकी आवश्यकता ।

अन्तक्रियाधिकरणं तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते ।
तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यं ॥ १२३ ॥

अन्वयार्थौ—(अन्तक्रियाधिकरणं) मृत्यु समयकी क्रियाका सुधारना अर्थात् सन्यास धारण करना ही (तपःफलं) तपका फल है ('इति') इस प्रकार (सकलदर्शिनः) समस्त मताव-

लक्ष्मी (स्तुवते) कहते है (तस्मात्) इस कारण (यावद् विभवं) जहातक शक्ति है (समाधिमरणे) समाधिमरण करनेमे (प्रयतितव्यं) प्रयत्न करना चाहिये ॥ १२३ ॥

समाधिमरण करनेकी (सल्लेखनाकी) विधि ।

स्नेहं वैरं सङ्गं परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः ।
स्वजनं परिजनमपि च क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः ॥

अन्वयार्थौ—समाधिमरणके समय (स्नेहं राग (वैरं) द्वेष (सङ्गं) सबंध (च) और (परिग्रहं) बाह्याभ्यन्तर परिग्रहको (अपहाय) छोडकर (शुद्धमनाः सन्) शुद्धमन होता हुआ (प्रियैः वचनैः) प्रिय वचनोंसे (स्वजनं) अपने कुटुंबियोंको (च) और (परिजनं अपि) नौकर चाकरोंसे भी (क्षान्त्वा) क्षमा करावे और आप भी (क्षमयेत्) क्षमा करे ॥ १२४ ॥

आलोच्य सर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजं ।
आरोपयेन्महाव्रतमामरणस्थायि निश्शेषं ॥ १२५ ॥

अन्वयार्थौ—(निर्व्याजम्) छलकपटरहित (च) और (कृतकारितं अनुमतं)कृतकारित अनुमोदनासे किये हुए (सर्वं एनः) समस्त पापोंकी (आलोच्य) आलोचना करके (आमरणस्थायि) मरणपर्यंत रहनेवाले (निश्शेषं) समस्त (महाव्रतं) महाव्रतको (अरोपयेत्) धारण करे ॥ १२५ ॥

शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा ।
सत्त्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः ॥ १२६ ॥

अन्वयार्थौ—(शोकं) शोक (भयं) भय(अवसादं) विषाद (क्लेदं) राग (कालुष्यं) कलुषता (अरतिं अपि) और अर-

तिको (हित्वा) त्याग करके (च) तथा अपने (सत्त्वोत्साहं) बल और उत्साहको (उदीर्य्य) प्रगट करके (अमृतैः) ससारके दुःखरूपी सन्तापको दूर करनेवाले अमृतके समान (श्रुतैः) शास्त्रोंसे (मनः) मनको (प्रसाद्यं) प्रसन्न करे ॥ १२६ ॥

आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम् ।
स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत्क्रमशः ॥ १२७ ॥

अन्वयार्थौ—(क्रमशः) क्रमक्रमसे (आहारं) आहारको (परिहाप्य) छोडकर (स्निग्धं पानं) दुग्ध वा छाछको (विवर्द्धयेत्) बढावे (च) और (स्निग्धं) दुग्धादिकको (हापयित्वा) छोडकर (खरपानं) काजी और गर्मजलको (पूरयेत्) बढावे, अर्थात् पीता रहे ॥ १२७ ॥

खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या ।
पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥ १२८ ॥

अन्वयार्थौ—तत्पश्चात् (खरपानहापनां) उष्ण जलपानका त्याग (अपि) भी (कृत्वा) करके (अपि) और (शक्त्या) शक्तिसे (उपवासं कृत्वा) उपवास करके (सर्वयत्नेन) सर्व प्रकारके यत्नोंसे (पञ्चनमस्कारमनाः'सन्') पच नमस्कार मत्रको मनमें धारण करता हुआ (तनुं) शरीरको (त्यजेत्) छोड़े ॥ १२८ ॥

सल्लेखनाके अतीचार ।

जीवितमरणाशंसे भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः ।
सल्लेखनातिचाराः पञ्च जिनेन्द्रैः समादिष्टाः ॥ १२९ ॥

अन्वयार्थौ—(जीवितमरणाशंसे) जीने मरनेकी वाछा करना, (भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः) भय करना, मित्रादिकोंका स्मरण

देदीप्यमान होते हुए (त्रैलोक्यशिखामणिश्रियं) तीन लोककी शिरोमणिभूत शोभाको (दधति) धारण करते हैं ॥ १३४ ॥

पूजार्थाज्ञैश्वर्यैर्बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः।
अतिशयितभुवनमद्भुतमभ्युदयं फलति सद्धर्मः॥१३५॥

अन्वयार्थौ—(सद्धर्मः) सल्लेखनादिसे उपार्जन किया हुआ समीचीन धर्म (पूजार्थाज्ञैश्वर्यैः) प्रतिष्ठा, धन, आज्ञा और ऐश्वर्य-से तथा (बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः) सेना नौकर चाकर और काम भोगोंकी बहुलतासे (अतिशयितभुवनं) लोकातिशायी अर्थात् बहुत बड़े और (अद्भुतं अभ्युदयं) अद्भुत अभ्युदयको (फलति) फलता है ॥ १३५ ॥

इति श्रीसमन्तभद्रस्वामिविरचिते रत्नकरण्डनाम्नि उपासकाध्ययने सल्लेखनावर्णनो नाम षष्ठः परिच्छेदः समाप्तः ॥ ६ ॥

अर्थ—इसप्रकार श्रीसमन्तभद्रस्वामीके रचे हुए रत्नकरण्डनामक श्रावकाचारमें सल्लेखनावर्णनमाला छठा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

श्रावककी ग्यारह प्रतिमा (कक्षा)।

श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः॥ १३६ ॥

अन्वयार्थौ—(देवैः) सर्वज्ञकरके (श्रावकपदानि) श्रावकके पद अर्थात् दरजे (एकादश देशतानि) ग्यारह प्रकारके उपदेश किये गये हैं; (येषु) जिनमें (खलु) निश्चय करके (स्वगुणाः) अपने गुण (पूर्वगुणैःसह) पहिलेके समस्त गुणोंसहित (क्रमविवृद्धाः 'सन्तः') क्रमसे बढते हुए (संतिष्ठन्ते) रहते हैं ॥ १३६ ॥

भावार्थ—ऊपरकी प्रतिमा धारण करनेवालोंको उसके पहलेकी

अन्वयार्थौ—सल्लेखनाधारण करनेवाले पुरुष (निरतिशयाः) अतिशयरहित अर्थात् ज्ञानादिगुणोके हीनाधिक भावसे रहित (निरवधयः) कालकी मर्यादारहित (विद्यादर्शनशक्तिस्वास्थ्य-प्रह्लादतृप्तिशुद्धियुजः) अनत ज्ञान, दर्शन, वीर्य, परम उदासीनता, अनन्तसुख, तृप्ति और द्रव्यकर्मभावकर्मरूपी मलरहितताकर युक्त होते हुए (निःश्रेयसं सुखं) मोक्षके सुखमें (आवसन्ति) चिरकालतक निवास करते है ॥ १३२ ॥

काले कल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रिया
लक्ष्या। उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोकसंभ्रा-
न्तिकरणपटुः ॥ १३३ ॥

अन्वयार्थौ—(च) और (यदि) यदि (त्रिलोकसम्भ्रान्तिकरणपटुः) तीनलोकको लौट पौट करनेमें समर्थ ऐसा (उत्पातःअपि) उत्पात भी (स्यात्) हो, तथापि (कल्पशते काले) सैकडो कल्पकाल (गते अपि) बीतने पर भी (शिवानां) मोक्षप्राप्त जीवोंके ज्ञानादिकगुणोंमें (विक्रिया) कोई फेरफार (लक्ष्या) माल्रम (न) नहीं होता है ॥ १३३ ॥

निःश्रेयसमधिपन्नास्त्रैलोक्यशिखामणिश्रिय दधते।
निष्किट्टिकालिकाच्छविचामीकरभासुरात्मानः॥१३४॥

अन्वयार्थौ—(निःश्रयसं अधिपन्नाः) मोक्षको प्राप्त होनेवाले जीव (निष्किट्टिकालिकाच्छविचामीकरभासुरात्मानः 'सन्तः') किट्टिक और कालिमा रहित छविको धारण करनेवाले सुवर्णके समान

देदीप्यमान होते हुए (त्रैलोक्यशिखामणिश्रियं) तीन लोककी शिरोमणिभूत शोभाको (दधति) धारण करते हैं ॥ १३४ ॥

पूजार्थाज्ञैश्वर्यैर्बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः ।
अतिशयितभुवनमद्भुतमभ्युदयं फलति सद्धर्मः॥१३५॥

अन्वयार्थौ—(**सद्धर्मः**) सल्लेखनादिसे उपार्जन किया हुआ समीचीन धर्म (**पूजार्थाज्ञैश्वर्यैः**) प्रतिष्ठा, धन, आज्ञा और ऐश्वर्य-से तथा (**बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः**) सेना नौकर चाकर और काम भोगोंकी बहुलतासे (**अतिशयितभुवनं**) लोकातिशायी अर्थात् बहुत बड़े और (**अद्भुतं अभ्युदयं**) अद्भुत अभ्युदयको (**फलति**) फलता है ॥ १३५ ॥

इति श्रीसमन्तभद्रस्वामिविरचिते रत्नकरण्डनाम्नि उपासकाध्ययने सल्लेखनावर्णनो नाम षष्ठः परिच्छेदः समाप्तः ॥ ६ ॥

अर्थ—इसप्रकार श्रीसमन्तभद्रस्वामीके रचे हुए रत्नकरण्डनामक श्रावकाचारमें सल्लेखनावर्णनमाला छट्ठा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

श्रावककी ग्यारह प्रतिमा (कक्षा) ।

श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु ।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥ १३६ ॥

अन्वयार्थौ—(**देवैः**) सर्वज्ञकरके (**श्रावकपदानि**) श्रावकके पद अर्थात् दरजे (**एकादश देशतानि**) ग्यारह प्रकारके उपदेश किये गये हैं; (**येषु**) जिनमें (**खलु**) निश्चय करके (**स्वगुणाः**) अपने गुण (**पूर्वगुणैःसह**) पाहिलेके समस्त गुणोंसहित (**क्रमविवृद्धाः 'सन्तः'**) क्रमसे बढते हुए (**संतिष्ठन्ते**) रहते हैं ॥ १३६ ॥

भावार्थ—ऊपरकी प्रतिमा धारण करनेवालोंको उसके पहलेकी

सब प्रतिमायें पालना पड़ती हैं। प्रतिमाओंका धारण विना क्रमके नहीं होता है ॥ १३६ ॥

१ दर्शनिक (दर्शनप्रतिमाधारी)।

सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः।
पञ्चगुरुचरणशरणो दर्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः ॥ १३७ ॥

अन्वयार्थौ—('यः') जो (**संसारशरीरभोगनिर्विण्णः**) संसार शरीर व भोगोंसे विरक्त हो, (**सम्यग्दर्शनशुद्धः**) जिसका सम्यग्दर्शन शुद्ध अर्थात् अतीचाररहित हो, (**पञ्चगुरुचरणशरणः**) जिसे पचपरमेष्ठीके चरणोंकी शरण हो, तथा जो (**तत्त्वपथगृह्य**) सत्यार्थ मार्गका ग्रहण करनेवाला हो सो (**दर्शनिकः**) दर्शनप्रतिमाका धारी दार्शनिक ('**अस्ति**') है ॥ १३७ ॥

२. व्रतप्रतिमाधारी ।

निरतिक्रमणमणुव्रतपञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि।
धारयते निःशल्यो योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः ॥ १३८ ॥

अन्वयार्थौ—(**यः**) जो (**निःशल्यः 'सन्'**) शल्यरहित होता हुआ (**निरतिक्रमणं**) अतीचाररहित (**अणुव्रतपञ्चकं**) अणुव्रत पञ्चकको अर्थात् पाचों अणुव्रतोंको (**अपि**) तथा (**शीलसप्तकं च अपि**) शीलसप्तक अर्थात् गुणव्रतों और शिक्षाव्रतोंको भी (**धारयते**) धारण करता है (**असौ**) ऐसा पुरुष (**व्रतिनां**) व्रतधारियोंमें (**व्रतिकः**) व्रत प्रतिमाका धारी (**मतः**) माना गया है ॥ १३८ ॥

सामायिकप्रतिमाधारी।

चतुरावर्त्तत्रितयश्चतुःप्रणामः स्थितो यथाजातः।
सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिव-
न्दी ॥ १३९ ॥

अन्वयार्थौ—जो (चतुरावर्तत्रितयः) चारों दिशाओंमें तीन तीन आवर्त करता है, (चतुःप्रणामः) चार चार प्रणाम करता है, (स्थित) कायोत्सर्गमें स्थित रहता है, (यथाजातः) अन्तरंग और बहिरंग परिग्रहकी चिन्तासे परे रहता है, (द्विनिषद्यः) खड्गासन और पद्मासन इन दो आसनोंमेंसे कोई एक आसन लगाता है, (त्रिसन्ध्यं अभिवन्दी) और त्रिकाल वन्दना करता है, वह (सामयिकः) सामायिक करनेवाला सामायिक प्रतिमाका धारी श्रावक है ॥ १३९ ॥

४. प्रोषधप्रतिमाधारी।

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य।
प्रोषधनियमविधायी प्रणधिपरः प्रोषधानशनः॥१४०॥

अन्वयार्थौ—('यः') जो (मासे मासे) महीने महीने (चतुर्षु अपि) चारों ही (पर्वदिने) पर्वोंमें अर्थात दो अष्टमी और दो चतुर्दशीके दिनोमें (स्वशक्तिं) अपनी शक्तिको (अनिगुह्य) न छुपाकर (प्रणधिपरः सन्) शुभध्यानमे तत्पर होता हुआ (प्रोषधनियम-

---

१ प्रातःकाल, मध्यान्हकाल और सन्ध्याकाल।

विधायी) आदिअन्तमे प्रोपधपूर्वक उपवास करनेवाला हो, ('सः') वह (प्रोषधानशनः) प्रोपधोपवासप्रतिमाका धारी है

५. सचित्तत्यागप्रतिमाधारी ।

मूलफलशाकशाखाकरीरकन्दप्रसूनवीजानि ।
नामानि योऽत्तिसोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥ १४१ ॥

अन्वयार्थौ—(यः) जो (आमानि) कच्चे (मूलफलशाकशाखाकरीरकन्दप्रसूनवीजानि) मूल, फल, शाक, शाखा करीर (वासकी कोंपल वा कैर) जमीकद, पुष्प और वीज (न अत्ति) नहीं खाता है (सः) वह (दयामूर्तिः) दयाकी मूर्ति है और (अयं एव) यह ही (सचित्तविरतः) सचित्तत्याग प्रतिमाका धारी श्रावक ('अस्ति') है ।

७. रात्रिभुक्तित्यागी ।

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम्
स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्त्वेष्वनुकम्पमानमनाः १४२

अन्वयार्थौ—(यः) जो (सत्त्वेषु) जीवोंपर (अनुकम्पमानमनाः) दयारूपचित्तवाला होता हुआ (विभावर्यां) रात्रिमें (अन्नं) चावलमूँगादि (पानं) दुग्धजलादिक (खाद्यं) कलाकद मोदकादि और (लेह्य) चाटने योग्य रवड़ी आदिक पदार्थोंको (न अश्नाति) नहीं खाता है, (सः) वह (रात्रिभुक्तिविरतः) रात्रिभुक्तित्यागनामक प्रतिमाका धारी है ॥ १४२ ॥

---

१ अपक्व अर्थात अग्निमें विना पके अथवा पेड पर विना पके ।

ब्रह्मचर्य्यप्रतिमा ।

मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सं ।
पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥ १४३ ॥

अन्वयार्थौ—(यः) जो (मलबीजं) मलके बीजभूत, (मलयोनिं) मलको उत्पन्न करनेवाले, (गलन्मलं) मलप्रवाही, (पूतिगन्धि) दुर्गन्धियुक्त, (बीभत्स) और लज्जाजनक वा ग्लानि-युक्त (अङ्गं) अगको (पश्यन्) देखता हुआ (अनङ्गात्) काम-सेवनसे (विरमति) विरक्त होता है (सः) वह (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचर्य नामक प्रतिमाका धारी ब्रह्मचारी है ॥ १४३ ॥

८ आरंभत्यागप्रतिमा ।

सेवाकृपिवाणिज्यप्रमुखादारम्भतो व्युपारमति ।
प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ॥ १४४ ॥

अन्वयार्थौ—(यः) जो (प्राणातिपातहेतोः) जीव-हिंसाके कारण (सेवाकृपिवाणिज्यप्रमुखात्) नौकरी खेती व्या-पारादिकके (आरम्भतः) आरम्भसे (व्युपारमति) विरक्त होता है, सो (असौ) यह (आरम्भविनिवृत्तः) आरंभत्यागप्रतिमाका धारी है ॥ १४४ ॥

९ परिग्रहत्यागप्रतिमाधारी ।

बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः ।
स्वस्थः सन्तोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः ॥ १४५ ॥

अन्वयार्थौ—('यः') जो (बाह्येषु) बाहरके (दशसु—व-स्तुषु) दशों परिग्रहोंमें (ममत्वं) ममताको (उत्सृज्य) छोड़करके

(निमर्मत्वरतः 'सन्') निर्ममत्वमे रत होता हुआ (स्वस्थः) मायादिरहित स्थिर और (सन्तोपपरः) सन्तोपवृत्ति धारण करनेमें तत्पर है (सः) वह (परिचित्तपरिग्रहात्) परिचित्तपरिग्रहसे (विरतः) विरक्त है, अर्थात् परिग्रहत्याग प्रतिमाका धारक है ॥१४५॥

१० अनुमतित्यागप्रतिमाधारी ।

अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे वैहिकेषु कर्मसु वा ।
नास्ति खलु यस्य समधीरनुमतिविरतः स मन्तव्यः ॥

अन्वयार्थौ—(यस्य) जिसकी (आरम्भे) आरंभमें (वा) तथा (परिग्रहे) परिग्रहमें (वा) तथा (ऐहिकेषु कर्मसु) इस लोकसम्बन्धी कार्योंमें (अनुमतिः) अनुमति (न अस्ति) नहीं है, (सः) वह (समधीः) समानवुद्धिवाला (खलु) निश्चय करके (अनुमतिविरतः) अनुमतित्याग प्रतिमाका धारी (मन्तव्यः) मानने योग्य है ।

११. उत्कृष्ट श्रावक ।

गृहतो मुनिवनमित्वा गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य ।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥ १४७ ॥

अन्वयार्थौ—('यः') जो (गृहतः) घरसे (मुनिवनं) मुनिवनको (इत्वा) प्राप्त होकर (गुरूपकण्ठे) गुरुके निकट (व्रतानि) व्रत (परिगृह्य) धारण करके (तपस्यन्) तप करता हुआ (भैक्ष्याशनः) भिक्षाभोजन करता है ('सः') वह (चेलखण्डधरः) खण्डवस्त्रका धारी (उत्कृष्टः) उत्कृष्ट श्रावक है ॥ ४७ ॥

श्रेष्ठज्ञाताका स्वरूप।

पापमरातिर्धर्मो बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन्।
समयं यदि जानीते श्रेयो ज्ञाता ध्रुवं भवति ॥१४८॥

अन्वयार्थौ—(जीवस्य) जीवका (पापं) पाप (अरातिः) वैरी है (च) और (धर्मः) धर्म (बन्धुः) मित्र है, (इति) इस प्रकार (ध्रुवं) नित्य (निश्चिन्वन्) विचारता हुआ (यदि) जो (समयं) शास्त्रको (जानीते) जानता है, ('सः एव') वह ही (श्रेयः) श्रेष्ठ (ज्ञाता) ज्ञाता (भवति) है ॥ १४८ ॥

उपसंहार।

येन स्वयं वीतकलङ्कविद्या
दृष्टिक्रियारत्नकरण्डभावं।
नीतस्तमायाति पतीच्छयेव
सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषु विष्टपेषु ॥ १४९ ॥

अन्वयार्थौ—(येन) जिसने (स्वयं) अपनेको (वीतकलङ्कविद्यादृष्टिक्रियारत्नकरण्डभावं) निर्दोष ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूपी रत्नोंका पिटारा (नीतः) बनाया (तम्) उसको (त्रिषु विष्टपेषु) तीनो जगतोंमें (पतीच्छया इव) पतिकी समान इच्छा करके (सर्वार्थसिद्धिः) धर्म अर्थ काम मोक्षकी सिद्धिरूप स्त्री (आयाति) प्राप्त होती है ॥ १४९ ॥

अन्तमंगल।

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु।

कुलमिव गुणभूपा कन्यका संपुनीता-
ज्जिनपतिपद्पद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः ॥ १५० ॥

अन्वयार्थौ—(जिनपतिपदपद्मप्रेक्षणी) गणधरादिकोंके पति तीर्थंकर भगवान्के चरण कमलोंका निरीक्षण करनेवाली अथवा भगवानके कहे हुए सुवन्त तिङन्त रूप पदोंपर श्रद्धा रखनेवाली (दृष्टिलक्ष्मीः) सम्यग्दर्शनरूप लक्ष्मी (कामिनं) कामी पुरुपको (सुखभूमिः कामिनी इव) सुखकी भूमि स्त्रीकी तरह (मां सुखयतु) मुझको सुखी करो, तथा (सुतं) पुत्रको (शुद्धशीला जननी) इव शुद्धशील माताकी तरह (मां भुनक्तु) मेरी रक्षा करो, तथा (कुलं) कुलको (गुणभूपा कन्यका इव) गुणभूषित कन्याके समान (संपुनीतात्) पवित्र करो ॥ १५० ॥

इति श्रीसमन्तभद्रस्वामिविरचिते रत्नकरंडकनाम्नि उपासका-ऽध्ययने एकादशप्रतिमावर्णनं नाम सप्तमः परिच्छेदः ॥ ७ ॥

अर्थ—इस प्रकार श्रीसमन्तभद्रस्वामीके बनाये हुए रत्नकरण्ड नामक श्राव-काचारमें एकादशप्रतिमावर्णनवाला सातवा परिच्छेद पूर्ण हुआ ॥ ७ ॥

